शाक्य

रचयिता
रमेशचन्द्र गौड़

रचना प्रकाशन
254, शास्त्री सदन, खूंटेटों का रास्ता, जयपुर-1.

दो शब्द

पतनोन्मुख समाज को सद्गुणोन्मुखी बनाने के लिए सत्साहित्य की कितनी आवश्यकता है, यह तथ्य सर्वविदित है। समय-समय पर रचनाकारों ने इस प्रकार के साहित्य का प्रणयन कर समाज को सदाचार का सन्देश दिया है।

इसी शृङ्खला में 'शाक्य' का प्रस्तुतीकरण एक उत्साहप्रद और प्रशंसनीय कार्य है। काव्य-गुणों से युक्त यह कृति न केवल करुणावतार बुद्ध का प्रेरक चरित्र है, अपितु यह अपने शाश्वत सन्देश द्वारा जन-कल्याण की भावनाओं को परिपुष्ट करता है, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध कराता है। यह न केवल आध्यात्मिक जिज्ञासाओं की तृप्ति करता है, अपितु सत्य-अहिंसा, त्याग, मर्यादा जैसे सद्गुणों के प्रसार का सन्देश भी प्रदान करता है। इस रचना में उस सम्यक्ज्ञान की सफल प्रस्तुति है, जिसके द्वारा जीव अपने अन्तर्बाह्य तिमिरावरण से मुक्ति प्राप्त करने के निमित्त सम्बल प्राप्त कर सकता है।

आशा है इस प्रेरणादायिनी कृति का सुधी पाठक स्वागत करेंगे।

7 अप्रेल, 1986 — डॉ. विष्णु पंकज

उपोद्घात

शाश्वत सत्य त्याग, प्रतिभा, देवत्व शक्ति, अहिंसा, सौजन्यता, दया और सार्वजनीन कल्याण-भाव के प्रचेता-प्रपोषक और उन्नायक महामानव 'शाक्य' के प्रति लेखन सर्वथा 'अव्यापारेषु व्यापारः' है, परन्तु भाव और औत्सुक्य का प्रतिफल 'शाक्य' कृति है। जीवन के धारितस्वरूप में संघर्ष ही अनन्यतम साथी और संवाहक शाक्य सर्वांश मार्गदर्शक हैं, क्योंकि "सर्वं विश्वं भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्" को हम अस्वीकार कर विमुख हैं, इसीलिए विभिन्न संधि-काल में "जगद्भवोऽपि यो भिक्षुः भूतावासोऽनिकेतनः। विश्वगोप्ताऽपि दिग्वासा तस्मै कस्मै नमो नमः॥" के प्रतिरूप बुद्ध जन्म धारण करते हैं, जो "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुश्रुतेन" आप्त-वचनों के प्रपोषक एवं उन्नायक बन सर्वभावेन जन-कल्याण में रत होते हैं–तदनुरूप महामानव ही स्तुत्य हैं और 'शाक्य' उनमें से एक है। अत. इस कृति 'शाक्य' में भाव और मौलिकता को सजाने का अत्यल्प प्रयास किया गया है।

समाज को सम्यक् रूप में संगठित करने हेतु सरल-सुबोध जीवन-दर्शन की आवश्यकता है–यह एक अनुभूत वैज्ञानिक शाश्वत सत्य है, इसीलिए समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, प्राकृतिक अनुशासन, शिक्षा, आचार और अन्तर्राष्ट्रीय-व्यवहार सभी को एक निश्चित जीवन दर्शन पर आधारित करने में शतांश सफलता सम्भव है, परन्तु जगत् में वस्तुत स्वरूप और स्थिति को समझने पर ही सम्यक् जीवन-दर्शन प्रस्थापित किया जाना श्रेयस्कर है। सम्प्रति यह भूलोकीय जगत् विज्ञान सम्मत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और चरमोत्कर्षी-विध्वंसक-सामरिक विभिन्न परीक्षणों से गुजर रहा है और किसी युद्ध के जन्मकाल जैसी परिस्थितियों से घिरा है, अतः जगत् के वास्तविक स्वरूप को हृदयंगम किया जाना परमावश्यक है। जगत् क्या है, जगत् में जीव का महत्व और स्थान क्या है? इसी प्रकार की जिज्ञासाओं की पूर्ति को ही समाज के सव्यूहन के आधारस्तम्भ पर जीवन-दर्शन के रूप में निश्चित किया जा सकता है। साथ ही जीवन के सभी क्षेत्रों में विज्ञान सम्मत शाश्वत सत्य 'कर्तव्याकर्तव्य' के निराकरण की मूलभूत आवश्यकता भी है। किस

चिन्तन में इन मूलभूत सत्यों के निराकरण उपलब्ध हों, उसी को जीवन-दर्शन की संज्ञा दी जा सकती है, ऐसा मेरा सोचना है।

त्याग, अहिंसा, आदर्श, अनुशासन, सदाचार, सौम्य-मर्यादा और सर्वांश निर्भयता जैसे शाश्वत विशिष्ट गुणों के पुनर्जीवितकर्त्ता शाक्य के उपदेशों से सम्पूर्ण विश्व दीर्घ-काल तक लाभान्वित रहा है, परन्तु आज साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता और शासनों की ऐतिहासिक निरंकुशताओं में शाक्य के उपदेश और जीवन-दर्शन ढक गये हैं, फिर भी ये विश्व में प्रवाहमान है। ऐतिहासिक और भौगोलिक सीमोल्लंघन पर उत्खनन से प्राप्त तथ्य चौंका रहे हैं, जिनमें शाश्वत सत्य जीवन-दर्शन के पड़ाव हैं। इसीलिए मैंने शाक्य पर लिखना श्रेयस्कर माना है।

'शाक्य' के प्रथम तीन सर्ग किशोरावस्था में कृष्णगृह कारामध्य राष्ट्रीय स्वतान्त्र्यांदोलनान्तर्गत 1944 में लिखे, चौथे से आठवें सर्ग पर्यन्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालयान्तर्गत अध्ययनाध्यापन काल में तथा शेष तीन सर्ग संघर्ष और पारिवारिक कलह जैसे शुभदा क्षणों में लिखे। लेखनकाल में शुरू से अन्त तक प्रातः स्मरणीय पूज्य आध्यात्मिक श्रीगुरु महामहोपाध्याय कविराज श्री गोपीनाथजी महाराज और राजनीतिक तथा साहित्यिक आदर्श श्रीगुरु श्री डॉ. सम्पूर्णानन्द जी 'बाबूजी' एवं जीवन सचेतक महा पण्डित श्री राहुलजी सांकृत्यायन के शुभाशीर्वाद मेरे साथ थे और जीवनपर्यन्त रहेंगे। इस अव्यक्त तत्व और शुभाशीर्वाद के प्रति लिखना मेरी शक्ति से परे है। श्री खुशाल चन्द जी गोरा वाला, पण्डित श्रीगोपाल शास्त्री 'दर्शन केशरी' श्री सभापतिजी उपाध्याय, श्री शिव विनायक मिश्र, श्रीघनश्यामदासजी बिड़ला, श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु तथा बाबू श्री श्रीप्रकाशजी जैसे व्यक्ताव्यक्त विद्वद्वरों की शुभाशंसा एवं निदेशों से अभिभूत हूँ। शाक्य की पाण्डुलिपि को स्वर्गीय आचार्य पण्डित हजारीप्रसादजी द्विवेदी और पूज्य पण्डित श्री कमलापतिजी त्रिपाठी प्रकृत्या आशुतोष तथा प्रत्युत्पन्नमति-विद्वद्वर ने देखा और शुद्ध किया, उनकी श्रीचरण-रज प्राप्ति हेतु सदैव प्रयत्नशील हूँ।

शाक्य के प्रकाशन में विलम्ब दैवयोग से ही हुआ, जिसमें प्रच्छन्न ज्ञाताज्ञात कारण हो सकते है और कितनी ही बुद्ध पूर्णिमाओं को इसने आते जाते देखा। इस दीर्घ-काल के अन्तराल में पाण्डुलिपि की प्रतियां न

जाने कितने हाथों में खेली और खोई। कालगति बड़ी प्रबल होती है। 17 मार्च, 84 को श्रीमती इन्दिराजी ने धुलेंडी का नमन स्वीकारते हुये 'शाक्य' से यशोधरा कथित कुछ छन्द सुने, प्रसन्न हो लोकमाता ने आशीर्वाद दिया 'अच्छा है, छपना चाहिए'। तत्पश्चात् 30 मार्च, 84 को श्री के. के. बिड़लाजी ने प्रकाशनार्थ पाण्डुलिपि चाही और 12 सितम्बर, 84 को वीतरागी तपस्विनी कैलाशवती के श्री चरणों का आशीर्वाद मिलते ही रचना प्रकाशन के मालिक श्री रामशरणजी ने 13 फरवरी से प्रकाशन कार्य प्रारम्भ किया, जो आज सम्पन्नता पर है, तदर्थ मैं उनका मनसा कृतज्ञ और अमित आभारी हूँ। आदरणीय डॉ. प्रभाकरजी शास्त्री और डॉ. रूपनारायणजी त्रिपाठी का इसलिए आभारी हूँ कि प्रकाशन के समय उन्होने इसे स्वरूप दिया।

बुद्धों की शाश्वत शक्ति लोकमाता के स्थानीय पार्षद 'श्री शिवनवल' वृजजगनराम सहित कुल 177 धर्मरत जीव तथा सदा नीतिज्ञ 'श्री वसन्त' का भी मै आभारी हूँ, जिनकी सदैव उभय पक्षी क्षेत्रो मे अमित कृपा रही है।

रज्जो के प्रति कृतज्ञता मेरे रक्त मे है, सभी कुछ उन्ही की देन है। स्वान्तः सुखाय लेखन में ऐतिहासिक प्रामाणिकता एवं मौलिकता की कमी हेतु विदित-अविदित प्रच्छन्न अपराधों के लिए अल्पज्ञता, अल्पमेधाविता और प्रमाद के कारण सदैव क्षमा-याची हूँ।

—रमेशचन्द्र गौड़

गउनविर साहित्यायन
कमलानेहरु नगर (अजमेर रोड), जयपुर

卐 श्रीगणेशाय नमः 卐

शाक्य

प्रथम सर्ग

धर्म-सु-चक्र-प्रवर्तन करने
हो सम्यक् सम्बुद्ध,
शाक्य-सिंह मृगदाव पधारे
जीत मार से युद्ध । (१)

उनका था कमनीय कलेवर
अति ही ज्योति-पुन्ज,
पुण्य प्रभा से उद्‌भासित
होता था मन्जु-निकुन्ज । (२)

देख उन्हें ऐसा लगता था
मानो ये है विष्णु,
अथवा आये हैं तप करने
इन्द्रासन तज जिष्णु । (३)

होता था प्रस्नवित स्वयं ही
धेनु-वृन्द से दुग्ध,
वे उनको देखा करती थी
हो अत्यन्त विमुग्ध । (४)

परिवर्तित हो गया हिंसकों
का भी क्रूर-स्वभाव,
एक अलौकिक आभा से
आलोकित था मृगदाव । (५)

मनुज-वेश में देव दनुज
दे जाते थे भोज्य पदार्थ,
शिष्य-वृन्द के सहित तृप्त वे
होते थे सिद्धार्थ। (६)

करुणा के वे वरुणालय थे
अनुपम था औदार्य,
तपःपूत वे देव-दूत थे
पूर्ण रूप से आर्य। (७)

रोम-रोम मे भरा हुआ था
उनके प्रति सौजन्य,
उनके लिए नहीं था कोई,
जगतीतल में अन्य। (८)

अपना और पराया का वे
मिटा चुके थे भेद,
जीवनमुक्त महामानव थे
मन मे था निर्वेद। (९)

स्वच्छ सरोवर था लहराता
सघन-विजन के बीच,
कमल-करों से जो लेता था
रवि-शशि को भी खींच। (१०)

दर्शन-हेतु सुगत के आते
अथवा दोनों नित्य,
पराभूत होकर छिपते या
भय से चन्द्रादित्य। (११)

मधुगन्धी वह पावन-वन था
बहता त्रिविध समीर,
कलरव करते शुक-पिक जिससे
मिटती उर की पीर। (१२)

वृक्षों वल्लरियों को लख कर
शेष न रहती व्याधि,
मनोरमा अटवी विलोक कर
लगती स्वयं समाधि। (१३)

कुछ दूरी पर ही सुखराशि
काशी करती हास,
किन्तु न कोलाहल आता था
ऋषि-पत्तन के पास। (१४)

वहां शिवालय एक खड़ा था
जो था अति प्राचीन,
मेह-धाम में जहां पागुरी
करते हरिण अदीन। (१५)

नित्य सुवासित वन को करती
कस्तूरी की गंध,
पी पराग पुष्पों का मधुकर
बने हुये थे अंध। (१६)

पुण्य भूमि यह धन्य हो गई
आये हैं सिद्धार्थ,
इनके लिए जगत में दुर्लभ
है ही कौन पदार्थ ? (१७)

जन्म-जन्म की हुई साधना
इनकी सफलीभूत,
दुःख-निवारण-हित जगती के
ये तो हैं उद्भूत। (१८)

कपिलवस्तु का त्याग चुके हैं
ये शुद्धोदन सौध,
जैसे त्यागा रामचन्द्र ने
नृप दशरथ का सौध। (१९)

दोनों राजकुमारों का पर
भिन्न-भिन्न है त्याग,
था निर्वासित राघवेन्द्र का
स्वजनों में अनुराग। (२०)

थे सहचर सौमित्र राम के
सीता भी थी संग,
हिंसा-प्रतिहिंसा थी मन में
थे शरच्चाप निषंग। (२१)

गौतम ने कैवल्य-काम से
त्यागा है निज गेह,
जननी-जनक पुत्र-पत्नी से
तोड़ दिया है स्नेह। (२२)

बचपन से ही थे नितान्त ये
अति निःस्पृह-निस्वार्थ,
नामकरण था किया सोचकर
कुल-गुरु ने सिद्धार्थ। (२३)

छोड़ दिया माया ने इनका
जन्म-काल में साथ,
'असित' तपोधन ने देखा था
शैशव में ही हाथ। (२४)

और कहा नृप से मुनिवर ने-
"ये लेंगे सन्यास,
किन्तु चरण चूमेंगे भूपति
सुरपति होंगे दास। (२५)

बुझ जायेगा दुख-दावानल
ये होंगे पर्जन्य,
विकल-विश्व का विपद् मिटाने
ये आये हैं धन्य"। (२६)

शुद्धोदन ने कहा "मुने ! यह
एक पुत्र है हाय,
वह भी जब संन्यासी होगा
तब है कौन उपाय ?" (२७)

बोले मुनि—"मत अति विषण्ण हों
अब से ही नर-रत्न,
सम्भव है, भावी मिट जाये
हो यदि आप सयत्न।" (२८)

"अहह, सयत्न बनूँ मैं कैसे
बतलायें हे आर्य !
पुत्र न हो मेरा संन्यासी
वही करूं मैं कार्य। (२९)

और नहीं तो भला कौन जन
भोगेगा यह राज्य ?
मेरे सुत के द्वारा जब यह
होगा अति ही त्याज्य।" (३०)

"राजन् ! ग्रह इनके बतलाते
ये न रहेंगे गेह,
इनको डिगा नहीं सकते हैं
झंझा - आतप - मेह। (३१)

अन्य जन्म में भी त्यागी है
तृणवत् अपनी देह,
सत्य-अहिंसा-क्षमा-दया से
नित्य किया है स्नेह।" (३२)

पुरा-काल मे ब्राह्मण-कुल में
था इनका अवतार,
विद्या रूप तथा सद्गुण के
थे मानों आगार। (३३)

एक बार इनसे शोभित था
हिमगिरि का बन-प्रान्त,
शैल-शिखर पर ये बैठे थे
होकर अति ही शान्त। (३४)

चहक रहे थे वहां विहंगम
महक रहे थे फूल,
वह निदाघ की दोपहरी थी
मारुत था अनुकूल। (३५)

चरण चूमने की इच्छा से
धुनते थे तरु शीश,
उस निर्जन मे नही उपद्रव
कोई करता कीश। (३६)

दूर कहीं से सुन पडता था
निर्झर का संगीत,
करुणा-सदन वहां तो ये थे
सब जीवों के मीत। (३७)

पहने थे कापाय-वर्ण के
कटि में ये कौपीन,
'अजित' नाम का शिष्य वहां था
पद-समीप आसीन। (३८)

करता था लिपिबद्ध प्रश्न जो
कहते थे उससे प्रष्टव्य,
देख न किन्तु वह पाता था
अति दारुण भवितव्य। (३९)

हिला हिमालय सुन कर सहसा
एक भयंकर नाद,
सन्न हुए खग-मृग बेचारे
अजित हुआ सविषाद। (४०)

गिरि-उपत्यका में उसने फिर
डाली अपनी दृष्टि,
अनुभव किया कांपती है यह
अब भी सारी सृष्टि। (४१)

अति ही करुणा-पूर्ण दृश्य फिर
उसने देखा दूर,
अपने ही बच्चों को व्याघ्री
एक रही है घूर। (४२)

नन्हे-नन्हे बच्चे भी तो
वे हैं सद्यः जात,
और बुभुक्षा के कारण है
व्याघ्री का कृश-गात। (४३)

वह न क्षुधा के हेतु विजन में
कर सकती आखेट,
अतः चाहती निज शिशुओं के
द्वारा भरना पेट। (४४)

कौतूहल-पूर्वक फिर गुरु से
कहा सभी वृत्तान्त,
करुणाम्बुधि तत्काल हुए वे
पर-दुःख सुन उद्भ्रान्त। (४५)

बोले और अजित से "लाओ
व्याघ्री-हित आहार,"
अच्छा, देव ! अभी लाता हूँ
बन से पशु दो चार।" (४६)

करने लगा विजन में पशु का
अन्वेषण वह छात्र,
गुरु ने सोचा—"व्याघ्री है यह
अनुकम्पा की पात्र।" (४७)

कर सकती है क्षुधा-निवारण
    इसका मेरी देह
और रहेगा यह शरीर भी
    सदा न निःसन्देह। (४८)

तो न करूँ मैं क्यों इस नश्वर
    तन का तत्क्षण त्याग?
जिसे अन्ततः भी खायेंगे
    नोच नोच कर काग। (४९)

सोच यही वे शैल-शिखर से
    कूद गये तत्काल,
साक्षी हाथ शिष्य यह सौदा
    होता अपना भाग। (५०)

देखा उसने गुरु-शिर था
    मांस-हीन कंकाल,
लेटी थी व्याघ्री पीते थे
    दुग्ध मुग्ध हो बाल। (५१)

दूर किया है पार्थ! आपने
    देवों का भी दम्भ,
त्यागा तृणवत् नश्वर तन को
    बने प्रशान्तरतम्। (५२)

शंकाओं का समाधान अब
    कौन करेगा हन्त?
इस भूतल पर कहां मिलेगा
    ऐसा अनुपम सन्त? (५३)

जो रो-रो कर इस बेचारे ने
    किया वहीं तनु-त्याग,
अब भी गूंज रहा उस वन में
    दारुण करुण-विहाग। (५४)

आज आपका यह शोभित
उससे ही प्रासाद
आल्हादित हो करें न मन में
कुछ भी आप विषाद। (५५)

राजन् इनके जन्म-जन्म के
हैं अद्भुत आख्यान,
जन्मजात ये ज्ञानी मुनि हैं
मत समझें नादान। (५६)

कपिलवस्तु का राजवंश यह
सच है आज कृतार्थ
जिस कुल में अवतरित हुए हैं
अति सुन्दर सिद्धार्थ। (५७)

इनका सुन वैराग्य आप मत
हों कुछ भी विक्षिप्त,
सम्भव है न बनें सन्यासी
सुख में होकर लिप्त। (५८)

जरा-जीर्ण रोगी कभी ये न देखें
नहीं चित्त में स्वल्प सन्ताप पावें
सदा कीजिए यत्न हे भूप ऐसा
व्यथा विश्व से ये न कभी कांप जावें। (५९)!

"गुरुवर! अब से ही यत्न ऐसा करूंगा
प्रिय सुत यह मेरा हर्म्य में ही रहेगा,
अनुभव न करेगा विश्व की वेदना का
सुखद-भवन में ही सौख्य सारा रहेगा।" (६०)

पावस-पुत्र शरद आया था
इनके राजभवन में,
सहसा हाथ देखकर उसका,
हँसे कास उपवन में। (२१)

प्राचीरान्तर्गत परिखा का
अति निर्मल जल था,
तट-तरुओं की शाखाओं पर
खग-कुल का कलकल था। (२२)

चुगा रहे थे निज बच्चों को
धान्य चोंच से खंजन,
ज्ञात न किसने लगा दिया था
इनके दृग मे अंजन। (२३)

तूल-तुल्य शरदभ्र शुभ्र थे
जो नभ में रीते थे,
अब वे विद्युत-वनिता-विरही
मर मर कर जीते थे। (२४)

मूँद रहे दृग सहस्रदल
अलि फँसने वाले थे,
कुमुद विलोक समोद शशि को
अब हँसने वाले थे। (२५)

भूप भवन के सिंह द्वार सा
इन्द्र-धनुष लगता था;
जिसका लख प्रतिबिम्ब नीर मे
दारुण दु:ख भगता था। (२६)

अस्तंगते होने वाले थे
दिनकर भी क्षण भर में,
रश्मि रास पकड़े थे अपने
अश्वों की वे कर मे। (२७)

तैर रहे थे जल कुक्कुट गण
कनक-कमल कानन में,
कोकी को अवलोक कोक गण
थे सशोक निज मन में। (२८)

बैठे थे सिद्धार्थ शिला पर
एकाकी निर्जन मे,
चलता था द्वन्द्वों-प्रतिद्वन्द्वों
का क्रम उनके मन में। (२९)

बाण-विद्ध कलहंस गिरा फिर
उनके सम्मुख सहसा,
दौड़ पड़े उसको विलोक कर
और पाणि से परसा। (३०)

चूम लिया उसका मनोज्ञ मुख
और लगाया उर से,
उस मराल पर मोती-जैसे
उनके दृग जल बरसे। (३१)

लाल लाल लोहू से उसकी
सनी हुई थी पाखें,
पीड़ा से निकली पड़ती थीं
मानों उस की आंखें। (३२)

वह अवतंस विहंग वंश का
हंस मरा जाता था,
आहत था, उससे न अतः
नभ-सिन्धु तरा जाता था। (३३)

धीरे धीरे बाण निकाला
उसके आकुल-उर से,
छाती में रख छिपा लिया फिर
युग्म पाणि-पुष्कर से। (३४)

किया प्रचुर उपचार अतः वह
स्वस्थ्य लगा कुछ होने,
निर्मल जल से उसकी पांखे
लगे पुनः ये घोने । (३५)

इतने में ही देवदत्त का
तत्क्षण अनुचर आया,
आदर पूर्वक बड़े स्नेह से
अपना शीश झुकाया । (३६)

बोला—"मेरा एक निवेदन
कृपया सुनिये स्वामी,
रन्च न मुझ पर रोष कीजिये
मैं तो हूं अनुगामी । (३७)

यह मराल श्री देवदत्त के
शर से विद्ध हुआ है,
इस पक्षी पर स्वत्व अतः
उनका ही सिद्ध हुआ है।" (३८)

"सच है मारा देवदत्त ने
पर मैंने की रक्षा,
यह तो मरने ही वाला था,
दी प्राणों की भिक्षा । (३९)

यह था तब स्वाधीन विहंगम
जब था व्योम-विहारी,
स्वयं सिद्ध है, रक्षक ही है
अब इसका अधिकारी । (४०)

देखो वहां पडा है भू पर
दे दो उनका साधक,
मोह छोड दें वे मराल का
मैं हूं इसका नायक।" (४१)

चला गया अनुचर, विनम्र हो
सब सम्वाद सुनाया,
देवदत्त के उर में तत्क्षण
विषम विषाद समाया। (४२)

ले आये सिद्धार्थ हंस को
मध्य भवन में अपने,
लगे देखने देवदत्त भी
विहग प्राप्ति के सपने। (४३)

शुद्धोदन नृप के समीप जा
कर वे बोले निर्भय,
युग-भ्राताओं के विवाद का
करें आप ही निर्णय। (४४)

नृप निदेश से सचिव वृन्द ही
बने वहां निर्णायक,
सिद्ध हुआ सिद्धार्थ हंस के
एक मात्र हैं नायक। (४५)

अब तो ये निश्चिन्त हंस को
लगे चुगाने मोती,
यों ही इनकी अन्य जीव पर
अनुकम्पा ही होती। (४६)

इनका था अत्यन्त मनोहर
कन्थक नामक घोड़ा,
खाया होगा कभी न उसने
इनके कर से कोड़ा। (४७)

काटी जाती जब कुठार से
किसी वृक्ष की डाली,
लता-गुल्म का कर्तन करते
या उपवन में माली। (४८)

तब दुख देख वनस्पतियों का
　　द्रवीभूत हो जाते,
करुणा-वारिनिधि में ही वे
　　देवदूत खो जाते। (४९)

वज्रादपि हैं अति कठोर ये
　　कुसुमादपि हैं कोमल,
हृदय हिमालय सा है इनका
　　मन नभ सा है निर्मल। (५०)

प्रबुद्ध सिद्धार्थ प्रसिद्ध हैं ये
　　माता कृतार्थ इनकी सदा है,
मिटी नहीं किन्तु ललाट-लेखा
　　भिक्षान्न हा! हन्त इन्हें बदा है। (५१)

तृतीय सर्ग

हे ऋषि-पत्तन के मृगवन
तुम फूल रहे हो फूलो,
उस कपिलवस्तु नगरी को
हा, हन्त, किन्तु मत भूलो। (१)

ये जो करुणा-वरुणालय हैं
निर्जन में घूम रहे हैं,
जिनके चरणों को अविकल
कुश-कन्टक चूम रहे हैं। (२)

ये नम-मणि-कुल की मणि हैं
इनका अति चारु चरित है,
सच सुकृत पुराकृत कोई
ऋषिपत्तन का प्रकटित है। (३)

मूरु हो, अहां, यदि मुझ से
इनका इतिवृत्त सुनोगे,
तो तुम गलदश्रु बनोगे
निश्चय ही शीश धुनोगे। (४)

हे शुक, पिक, अश्रु-कणों से
तुम अपना आनन धोलो,
छिप जाओ जा कहीं उलूको
रस में विष मत घोलो। (५)

देखो, युवराज यहां पर
आये हैं बन संन्यासी,
मव-वैभव त्याग चुके हैं
कैसे हैं मुक्ताभिलाषी ? (६)

अच्छा, इतिहास पुरातन
अब मैं इनका कहता हूँ,
आख्यानाम्बुधि में इनके
मैं सुख-पूर्वक बहता हूं। (७)

श्री शुद्धोदन भूपति से
सिद्धार्थ एकदा बोले,
हे तात! करूँगा मैं क्या
इस अतुल सम्पदा को ले? (८)

इस राग रंग से अब तो
अतिशय ही ऊब गया हूँ,
मैं तो विलास-वारिधि में
निश्चय ही डूब गया हूँ। (९)

इन प्राचीरों में कब तक
कहिये मैं बन्द रहूँगा?
क्या मैं न मुक्त-मारुत-सा
जग में स्वच्छन्द बहूँगा? (१०)

यदि पान न फेरा जाता
तो वह भी सड़ जाता है,
होता अपेय शुचि पय भी
जब सर में अड़ जाता है। (११)

मण्डूक-कूप जैसा ही
अब तक मेरा जीवन है,
उस पुण्य लुम्बिनी वन में
जाने को करता मन है। (१२)

कैसी चित्ताकर्षक है
उस देवदारु की छाया?
जिसके आश्रय में मुझको
माया ने था जनमाया। (१३)

जिसमें रहते हैं मामा
देखा न देवदह को भी,
ये नेत्र सदा मेरे हैं
नूतन दृश्यों के लोभी। (१४)

मुझ से तो खग अच्छे हैं
जो उड़ते नभ मण्डल में,
मैं बँधा हुआ हूँ पशु-सा
इस विस्तृत राजमहल में। (१५)

कितना विशाल आर्यावर्त है
हिमगिरि ललाट है जिसका,
नित पद प्रक्षालन करता
सागर विराट है जिसका। (१६

पांचाल, चेदि, कुरु, वज्जि है,
केरल, कलिंग है उत्कल,
मिथिला है मगध मनोहर
जनपद है सुन्दर कोसल। (१७)

काशी, कांची, कौशाम्बी
इसमें है वैभवशाली,
है रम्य राजगृह इसमे
मथुरा प्रयाग वैशाली। (१८)

विन्ध्याचल के जंगल हैं
अति ही मुद-मंगल कारी,
अपलक सुर देखा करते
जिनकी छवि अति ही न्यारी। (१९)

है पुण्य पंचनद बहते
बहती है यमुना वरुणा,
गंगा-कृष्णा-कावेरी
हैं प्रभु के उर की करुणा। (२०)

इनके तट पर मुनियों के
  अति ही मनोज्ञ आश्रम हैं,
उन तपोबनों के तरुवर
  छाया से हरते श्रम हैं। (२१)

इन दृश्यों के दर्शन हित
  मेरा मन अति विह्वल है,
शुचि तीर्थ-सलिल से होता
  मानव जीवन उज्ज्वल है। (२२)

अब तो मै पूर्ण युवा हूँ
  बीते दिन हैं शैशव के,
कैसे दिग्-विजय करूँगा
  पालने में पल वैभव के। (२३)

भ्रमणार्थ न आज्ञा होगी
  तो मन में रोष करूँगा,
इस समय राजधानी के
  दर्शन से तोष करूँगा। (२४)

मैं कपिलवस्तु नगरी का
  वर्णन सुनता रहता हूँ,
पर देख न उसको पाता
  शिर मैं धुनता रहता हूँ। (२५)

सुनता सुपारगिरि-जैसे
  वह है निकेतनों वाली,
अलका का मन हर लेती
  वह कनक केतनों वाली। (२६)

होता रहता घर घर मे
  सुनता हूँ वेदोच्चारण,
हिन हिन करते हैं घोडे
  चिंघाड़ा करते वारण। (२७)

देवालय दिव्य वहां हैं
जिनमें शंख-ध्वनि होती,
जौहरी हाट में करते
क्रय-विक्रय हीरे मोती। (२६)

नागर प्रमुदित करते हैं
हरि की शंकर की अर्चा,
अविकल होती रहती है
उपनिषद्-शास्त्र की चर्चा। (२६)

व्यवसाय अनेकों होते
जन हैं कर्तव्य-परायण,
पढ़ते सुनते रजनी में
सब हैं भारत-रामायण। (३०)

कल-कल निनाद करती है
वह रम्य रोहिणी सरिता,
उसके अति निर्मल जल में
मुख देखा करती सविता। (३१)

अति स्वच्छ संगमर्मर के
वे महल न मञ्जु-मुकुर हैं,
उनमे मुख देखा करते
सब उडुगण टुकुर-टुकुर हैं। (३२)

नगपति भी देखा करता
विस्मय से कंगूरों को,
लंका का भ्रम हो जाता
अति चंचल लंगूरों को। (३३)

मणि मंडित मठ में होती
गुनता हूं दिव्य कथायें,
क्या मैं प्रवेश कर सकता
उस सुषमा की सीमा में ? (३४)

क्या देख तात ! सकता हूँ
उसका प्रति चारु-चतुष्पथ ?
उस पर दौड़ा सकता क्या
मैं भी अपना स्वर्णिम रथ ? (३५)

यदि आप न आज्ञा देंगे
तो हृद्‌गति रुक जायेगी,
तोरण की पुण्य-पताका
वह प्रातः झुक जायेगी। (३६)

नरपति शुद्धोदन बोले
तू तो है मेरा तोता,
इन स्वर्ण- शलाकाओं में
क्यों है अति व्याकुल होता ? (३७)

जो है तेरी अभिलाषा
उसको न रोक सकता हूँ,
तू कपिलवस्तु हो आना
तुझ को न टोक सकता हूँ। (३८)

कल रुचिर रामनवमी है
प्रमुदित होंगे नर-नारी,
गृह सजे मिलेंगे सारे
छवि होगी अति ही न्यारी। (३९)

चले गए सिद्धार्थ चरण छू फूले नहीं समाये,
आया प्रातः पुण्य-पर्व देवों ने मंगल गाये। (४०)

चतुर्थ सर्ग

नगर निरीक्षण के उपरान्त
थे सिद्धार्थ नितान्त प्रशान्त,
अब न सुहाता किंचित् मौन
अच्छा लगता केवल मौन। (१)

होकर के अति ही उद्भ्रान्त
सेवन करते थे एकान्त,
उर में था अति अन्तर्दाह
उठता मन अत्यन्त कराह। (२)

पथ में कतिपय दृश्य विलोक
हुए थे वे अत्यन्त सशोक,
हुआ था उनसे ही निर्वेद
मन में भरा हुआ था खेद। (३)

यशोधरा बोली प्राणेश !
"कहिए क्या है उर मे क्लेश ?
क्यों रहता है चिन्तित चित्त ?
समझ न पाती हन्त निमित्त ? (४)

मेरे तो हैं आप अभिन्न
क्यो रहते हैं सम्प्रति खिन्न ?
भरी हुई है मेरी गोद
आप न क्यों पाते हैं मोद ? (५)

है मनोज्ञ सुत से पर्यंक
वह है सच अकलंक मयंक,
उसका भी मंजुल मुख देख
आती क्यो न हंसी की रेख" ? (६)

कान्ता से बोले सिद्धार्थ
"कहती हो तुम बात यथार्थ,
तुमसे है सम्बन्ध अभेद
अतः सुनो कारण निर्वेद। (७)

"मैंने नगर निरीक्षण हेतु
पार किया सरिता का सेतु,
पथ में बने हुए थे द्वार
झूल रहे थे सुरभित हार। (८)

पल्लव के थे वन्दनवार
जनता की थी भीड़ अपार,
मोदमयी थी सारी सृष्टि
होती थी फूलों की वृष्टि। (९)

देखी मैंने हर्ष-हिलोर
नागर थे आनन्द विभोर,
विविध वहा बजते थे तूर्य
चमक रहा था रथ ज्यों सूर्य। (१०)

सैन्धव थे स्यन्दन में चार
जो थे शोभा के आगार,
शुभे ! हमारे स्वागत-हेतु
फहर रहे थे अगणित केतु। (११)

पाता था मैं सौख्य अनन्त
तज समाधि आए थे संत,
मन्थर-गति से चलता यान
मेरा था सब जन पर ध्यान। (१२)

दीख पड़ा फिर ऐसा व्यक्ति
जिसमें शेष नहीं थी शक्ति,
धक्का खाकर वह निरुपाय
गिरा धरा पर सम्मुख हाय ! (१

सारथि बोला—"रथ को रोक
क्या जायेगा तू परलोक",
उठा संभल वह वृद्ध मनुष्य
देखा मैंने ग्राखों दृश्य। (१४)

सिकुड़ गई थी उसकी खाल
काश-कुसुम जैसे थे बाल,
ज्योति-दृगों की भी थी मन्द
चरणों की थी गति निष्पन्द। (१५)

मुख में एक नहीं था दंत
कमर कमान बनी थी हंत,
ग्रनायास हिलता था माथ
लकुट लिए था ग्रपने हाथ। (१६)

त्याग दिया मैंने द्रुत मौन
पूछा सारथि से यह कौन ?
बोला तब सारथि—हे तात !
जरा-जीर्ण है इसका गात। (१७)

भोग चुका है यह सब भोग
भोग रहे जैसे हम लोग,
काल बड़ा ही है विकराल
लेता सबकी ग्रांख निकाल"। (१८)

'तो क्या हम भी होंगे वृद्ध ?
क्या न रहेंगे सदा समृद्ध' ?
'हां परिवर्तित होता रूप,
सदा न रहता कोई भूप'। (१९)

यह है ग्रटल नियम हे नाथ !
कहा झुका कर उसने माथ,
मैंने लिया, दीर्घ निःश्वास
कुछ ढीली की उसने रास। (२०)

चलने लगे अश्व स्वच्छन्द
    हम थे विचारों में बन्ध,
दृश्य दुखद फिर अन्य विलोक,
    बोला 'सारथि ! लो रथ रोक'। (२१)

उधर करो तुम अपनी दृष्टि
    कैसी है उस नर की सृष्टि ?
आनन में है तनिक न ओज
    उपल-दलित ज्यों हो अम्भोज। (२२)

है न नसों में रक्त-प्रवाह
    देख इसे मैं रहा कराह,
पेट गया है इसका फूल
    देव न है इसके अनुकूल। (२३)

दीख रहा यह विपद्-विपन्न
    हाथ पैर इसके हैं सन्न,
वह सारथि बोला रथ रोक
    मान्य ! इसे मैं रहा विलोक। (२४)

यह सहता है मानव पीर
    इसीलिये है शिथिल शरीर,
जब आ जाता है संयोग
    व्याधि-ग्रस्त होते तब लोग। (२५)

'तो बतलादो मुझे अनन्य
    जग में ऐसे भी हैं अन्य' ?
'ऐसे तो हैं संख्यातीत
    जिनसे हैं अति विधि विपरीत'।(२६)

"क्या हम भी होंगे कृश-काय ?
    'हां, हम भी होंगे निरुपाय,'
मान्य ! यही बन जाता रोग
    भोग जिसे कहते हम लोग"। (२७)

'हाय ! भोग ही बनता रोग
तो भोगार्थ व्यर्थ उद्योग',
'हां, भोगार्थ व्यर्थ उद्योग
भोग सदा बनता है रोग'। (२८)

प्रिये ! बढ़ा फिर स्वर्णिम यान
मेरा अब था हृत-सा ज्ञान,
सुलझ सकी न समस्या मूढ़
मैं था किंकर्तव्य विमूढ़। (२९)

देवि ! हुआ मैं फिर म्रियमाण
देखा एक मनुज निष्प्राण,
कंधों पर रख मृतक-विमान
ले जाते थे लोग श्मशान। (३०)

लुप्त हुआ मेरा सब धैर्य
सारथि बोला रक्खें स्थैर्य,
सब जन मरते पाकर ताप
यों ही करते स्वजन विलाप। (३१)

भस्म-कीट मल बनती देह
मर जाने पर निःसंदेह,
'मृत होंगे हम भी अनिवार्य ?
और नहीं तो क्या है आर्य'। (३२)

'तब तो नश्वर है ससार'
'हां, इसमें है क्लेश अपार,'
'यहां नहीं है सुख का लेश'
'हां, केवल है जग में क्लेश'। (३३)

'होगा क्या तब लेकर राज्य' ?
'यह भी है नृवरों से त्याज्य,'
जन थे उत्सव में संलग्न
मैं विवाद में ही था मग्न। (३४)

दीख पड़ा तम-पूर्ण भविष्य
होना है कालाग्नि-हविष्य,
रथ पर स्वतः गया मैं कांप
डंसने लगे श्वाँस बन साँप। (३५)

बढ़ने लगा अधिक संताप
बोला तब वह सारथि आप,
'सौम्य, ! देखिए एक भदन्त
दीख रहे है अनुपम संत'। (३६)

तन पर है गैरिक परिधान
आनन्द मे है ओज महान,
जब नर ले लेता सन्यास
मिटते तब सांसारिक त्रास। (३७)

हैं न जगत् मे ये आसक्त
कर्म अशुभ हैं इनसे त्यक्त,
मरना इन्हें नही है कोप
इनका धन है केवल तोष। (३८)

रहता सदा नृपति को त्रास
ले लें आप न कही संन्यास,
'सखे ! सुहाता इनका वेश
भार-भूत मेरे है केश'। (३९)

कह पाये इतना सिद्धार्थ
समझ गयी गोपा शब्दार्थ,
इन बातो से उसका गात
कांप गया ज्यो चल-दल पात। (४०)

फिर भी उसने किया प्रयत्न
बुद्धिमती थी रमणी-रत्न,
उन्हें लगा कर अपने अंग
परिवर्तित कर दिया प्रसंग। (४१)

सत को देकर उनकी गोद
लगी कराने मनोविनोद,
दिखलाये कुछ परम पवित्र
निज कर चित्रित सुन्दर चित्र। (४२)

'क्या शकुन्तला है यह हंत ?
छोड़ गए जिसको दुष्यन्त' ?
'हां, शकुन्तला है यह हंत,
छोड़ गए इसको दुष्यन्त'। (४३)

'क्या है ये दुर्वासा संत ?'
'हां, ये हैं अत्यन्त असंत',
'दिया इन्होंने ही था शाप'
'किया इन्होंने ही था पाप'। (४४)

'पुनः हुए इसको पति लब्ध'
'कौन, मिटा सकता प्रारब्ध' ?
'दशरथ हैं ये भूपति मान्य'
'हां, वे ही हैं वृद्ध वदान्य'। (४५)

'थे प्रवीर ये रघुकुल-केतु
सुर-पुर चले गए सुत-हेतु,'
'हां, प्रवीर थे रघुकुल-केतु
सुर-पुर चले गए सुत-हेतु'। (४६)

'यह माता है मुझको चित्र
आश्रम है क्या परम पवित्र' ?
'हां, आश्रम है परम पवित्र
दीख रहे अस्तंगत मित्र'। (४७)

'यह है कमनीय कुटीर
हरता शुभे! हृदय की पीर,
अंकित है यह किसका रूप ?
लगता है यह मुझे अनूप'। (४८)

'ये सीता देवी हैं नाथ, !
भुकता स्वत: पदों पर माथ',
'इन्हें दिया था हरि ने त्याग
पर इनका है अचल सुहाग'। (४९)

'रिक्त आज इनसे है सौध'
'शून्य आज इनसे है औध',
'नारी तो होती है गाय'
'नर निष्ठुर ही होते हाय'। (५०)

'हां, तुम भी तो हो सीधी गाय'
'निष्ठुर आप न बनिए हाय !'
'शुभे ! करो मत यों उपहास
मैं हूं सदा तुम्हारा दास'। (५१)

इस "विनोद"—वारिधि की थाह
किसको भला मिलेगी थाह !
यों ही बीत गए दिन चार
बही धरातल पर मधु-धार। (५२)

शोभित था राका के अंक
सुन्दर सुत के तुल्य मयंक,
शीतल-मंद-सुगन्धित वात
करने लगी प्रफुल्लित गात। (५३)

हुये सभी जन निद्रा-मग्न
असित-कथित अब आया लग्न,
निर्मोही होकर सिद्धार्थ
चले ढूंढने वे धर्मार्थ। (५४)

उनका था अति दृढ संकल्प
विचलित नहीं हुये वे स्वल्प,
पत्नी को या सुत को देख
किया स्वमन में मीन न मेष। (५५)

हिमगिरि जैसे थे वे धीर
और उदधि-जैसे गम्भीर,
रहा जहां छन्दक शयनस्थ
गए वहा होकर वे स्वस्थ। (५६)

उपेन्द्र जैसे बलि को जगाते
सुरेन्द्र ज्यो मातलि को जगाते,
सिद्धार्थ त्यों ही अति ही अलोमी
लगे जगाने निज सुत को भी। (५७)

पता किसे है कि निशीथिनी मे
सिद्धार्थ जाते अवधूत होके,
निर्लिप्त हैं ये सुत भामिनी से
जन्मे यहां थे दिवादूत होके। (५८)

पंचम सर्ग

छंदक ! उठ जाग रे
घोर नींद त्याग रे,
कोक-गण सशोक हैं
शान्त तरु अशोक हैं । (१)

हैं न विहग बोलते
वे न सुरस घोलते,
क्यों कि अभी रात है
दूर सुप्रभात है । (२)

मञ्जुल मधुमास है
चारु चैत्र-हास है,
विहंस रही पूर्णिमा
विहंस रहा चन्द्रमा । (३)

उज्ज्वल आकाश है
पूर्णतः प्रकाश है,
विहंस रही माधवी
छोड़ चली भवाटवी । (४)

बेलें हैं खिल रही
केले हैं हिल रहे,
है अति नीरव-दिशा
है अति नीरव-निशा । (५)

क्यों न मित्र ! बोलता
क्यों न नेत्र खोलता ?
सुरभित सहकार है
फूले कचनार है । (६)

खिल रहे कनेर रे
हत, कर न देर रे,
फूल बन्धुजीव ये
लाल हैं प्रतीव ये। (७)

झुक चुके उलूक हैं
घू रहे मधूक हैं,
शम्भु से बबूल हैं
तीक्ष्ण लिए शूल हैं। (८)

बन्द हैं कमल-कली
निरानन्द हैं अली,
रजनी की गोद मे
हैं कुमुद प्रमोद में। (९)

ठीक है समय अरे
रञ्च कर न भय अरे,
सद्म से निकल चलें
छद्म से निकल चलें। (१०)

उष्णता न शीत है,
गूंजता न गीत है,
क्योंकि सभी सो रहे
स्वप्नों में खो रहे। (११)

मूक हैं मृदंग रे
हैं न राग-रंग रे,
रस भरी सुरा भरी
बज रही न बांसुरी। (१२)

केशर की क्यारियां
सुन्दर सुकुमारियां,
सोई हैं सेज पर
साज को सहेज कर। (१३)

हो रहे न नृत्य है
जग रहे न भृत्य है,
शस्त्र के समेत ये
प्रहरी अचेत हैं। (१४)

जम्बू जम्बीर ये
निम्ब-नीप वीर ! ये,
भूल रहे मोद मे
उपवन की गोद मे। (१५)

मा महा प्रजावती
वह यशोधरा सती,
है अभी अचेत रे
हैं नही सचेत रे। (१६)

राहुल भी सो रहा
लाल है न रो रहा,
शांत स्वर्ण-दीप है
सो रहे महीप हैं। (१७)

गधवाह बह रहा
सुन ले क्या कह रहा,
जाग महाभाग रे
अवसर न त्याग रे। (१८)

द्वारपाल सुप्त हैं
सारमेय लुप्त है,
हैं कही न डोलते
हैं कही न बोलते। (१९)

खुरा रहे कपाट हैं,
जो बड़े विराट है,
अड़ रही न अर्गला
लग रहीं न शृंखला। (

वात मान, कर त्वरा
जाकर के मन्दुरा,
घोड़े को शीघ्र ला
कोड़े को शीघ्र ला। (२१)

दूसरा न दास ला
चारु चन्द्रहास ला,
कोई मत टोक दे
कोई मत रोक दे। (२२)

वीर! मत विवाद कर
रंच मत विषाद कर,
कांप गया सारथी
भांप गया सारथी। (२३)

लेंगे संन्यास ये
देंगे अब त्रास ये,
धीर हड़बड़ा गया
वीर गिड़गिड़ा गया। (२४)

सिसक सिसक रो उठा
चरणों को धो उठा,
दैव दुर्विपाक था
वह अतः अवाक् था। (२५)

मुख भी न खोल सका
कुछ भी न बोल सका,
हंत, बड़ा क्लेश था
आर्य का निदेश था। (२६)

अश्व ला खड़ा किया
वक्ष को कड़ा किया,
रोम गिनगिना उठा
वाजि हिनहिना उठा। (२७)

किन्तु कौन गुन सका
    मौन कौन पुन सका,
सुन्दर युवराज था
    रत्न-जटित ताज था। (२८)

लहर रहे केश थे
    गाते गुण शेष थे,
भाल अति विशाल था
    तिलक यथा ताल था। (२९)

दृग युग अनमोल थे
    कुण्डल अति लोल थे,
वृषभ तुल्य स्कंध था
    चमचम कटिबंध था। (३०)

वज्र-तुल्य वक्ष था
    सत्य ही समक्ष था,
रक्तिम पद-त्राण थे
    नूतन अम्लान थे। (३१)

स्यूत-स्वर्ण तार थे
    सुषमा सम्भार थे,
धीर वह सज्जित था
    पंचशर लज्जित था। (३२)

चामीकर से मढ़े
    वह तुरग पर चढ़ा,
दामिनी कडक गई
    आ गयी चमक नयी। (३३)

बागडोर ही हिली
    नेंक भी नहीं झिली,
अश्व वह मचल पड़ा
    वायु तुल्य चल पड़ा। (३४)

छन्दक भी साथ था
धन्य वह सनाथ था,
बन्दी न नाहर थे
वीर अब बाहर थे। (३५)

री ! अनीकिनी तुझे
सैन्य—वाहिनी तुझे,
कोटिशः प्रणाम हैं !
नित्यशः प्रणाम हैं !! (३६)

रम्य रोहिणी, तुझे
मत्स्य-वाहिनी तुझे,
कोटिशः प्रणाम हैं !
नित्यशः प्रणाम हैं !! (३७)

दुर्ग-देवता तुम्हें
माता पिता तुम्हें,
कोटिशः प्रणाम हैं !
नित्यशः प्रणाम हैं !! (३८)

पुत्र वनिता तुम्हें
वंश सविता तुम्हें,
कोटिशः प्रणाम हैं !
नित्यशः प्रणाम हैं!! (३९)

उठना कराह नहीं
मरना न आह कहीं,
अनुचरी ! प्रणाम हैं
सहचरी ! प्रणाम हैं !! (४०)

हे नगर निवासियों
दुग्ध शर्करा पियो,
कालकूट मैं पिऊँ
लोक हेतु मैं जिऊँ। (४१)

आत्म-बोध के लिये
सत्य-शोध के लिये,
राज-पाट छोड़ता
ठाट-बाट छोड़ता। (४२)

घोड़े को मोड़ कर
दोनों कर जोड़ कर,
शाक्य सिंह ने कहे
श्वेत अश्रु-कण बहे। (४३)

गौतम औ सारथी
थे युगल महारथी,
रजनी में दूर थे
चले गये शूर वे। (४४)

हो गया प्रभात भी
बीत गयी रात भी,
फैल गयी बात भी
कांप गये गात भी। (४५)

जिस प्रकार गये वसुदेव जी
मधुपुरी तज के हरि को लिये,
उस समान चला वह सारथी
हय चढ़ा शक्यकेहरि को लिये।(४६)

कपिलवस्तु नितान्त छला गया
अहह ! कंथक कहां चला गया,
असित की श्रुति सत्य हुई गिरा
भवन में अब है कुहरा घिरा। (४७)

कहीं गिरे नरेन्द्र हैं, कहीं महा प्रजावती
कहीं सती यशोधरा प्रपीड़िता कराहती।
विलाप लीन पौर हैं अचेत दीखते सभी
भयावने प्रभूत हैं निकेत दीखते सभी। (४८)

षष्ठ सर्ग

छन्दक ! मनीमा आ गई
मानो मिली यह मा नयी,
अति रम्य सरिता तीर है
हरता हृदय की पीर है। (१)

क्या ही रुचिर वन-राजि है
लख कर चकित यह वाजि है,
विरही नहीं हैं कोक ये
अब हैं प्रसन्न अशोक ये। (२)

शैवालिनी के पद्म ये
हैं वस्तुतः श्री सद्म ये,
अलि पी रहे मकरन्द है
मृग विहरते स्वच्छन्द हैं। (३)

हैं कल कलापी नाचते
मानो सुरा पी नाचते,
उड़ते मनोज्ञ विहंग है
जिनके अनेकों रंग हैं। (४)

कल्लोलिनी की गोद में
हैं महिष अति सम्मोद में,
ये स्वतः बजते वेणु हैं
स्वाधीन कलभ करेणु हैं। (५)

कमनीय अति ही कुंज हैं
कैसे हरे तरु-पुंज हैं,
मन हैं परेवा हर रहे
शुक पिक कलेवा कर रहे। (६)

अब छिप चुकी ऊषा सखे
हैं झांकते पूषा सखे,
है सुहृद ! तू सच धन्य है
मेरा शुभेच्छु अनन्य है। (७)

इस वाजि से बाजी लगा
आया अमित्र ! भगा भगा,
अब सौम्य पकड़ लगाम ले
कुछ और कर विश्राम ले। (८)

दे दे मुझे करवाल तू
मत देख मेरा भाल तू,
ले ले शिरोरुह ये सखे
मुंह से न कर "अह" ए सखे ! (९)

मत डूब मेरे स्नेह में
ले जा इन्हे तू गेह में,
तू लौट जा कुलकेतु हे
मैं जा रहा तप हेतु हे ! (१०)

मुझ को न साथी चाहिये
हय या न हाथी चाहिये,
मैं सत्य शोध किये बिना
औ आत्म-बोध लिये बिना। (११)

गृह लौट सकता हूं नहीं
मैं व्यर्थ कहता हूं नहीं,
है भूमि शय्या आज से
अब काम क्या है ताज से ? (१२)

अब सब कहीं घर द्वार है
संसार ही परिवार है,
निज देह ही अब दास है
तरु मूल ही आवास है। (१३)

आकाश दिव्य वितान है
अब बाहु का उपधान है,
रथ अब न मन बहलायेंगे
पथ सूर्य शशि दिखलायेंगे। (१४)

अब मैं नहीं राजन्य हूँ
हे अंग ! अब नर वन्य हूँ,
अब लोष्ठवत् मणि कोष है
भिक्षान्न से ही तोष है। (१५)

अब है उपार्जन ज्ञान का
अब है विसर्जन मान का,
है वृक्षवत् रहना मुझे
शीतोष्ण है सहना मुझे। (१६)

"हैं कह रहे यह आर्य, क्या
हैं कर रहे यह कार्य क्या ?
किस भाँति लौटूँ मैं भला
यह काट दें मेरा गला। (१७)

श्रीमान् राजकुमार हैं
अत्यन्त ही सुकुमार हैं,
क्यों ले रहे संन्यास हैं
गृह में अनेकों दास हैं। (१८)

भवदीय जनक जनेश हैं
क्यों त्यागते यह वेश हैं,
हैं दहकती चिन्ता-चिता
मुझ को कहेंगे क्या पिता ? (१९)

है कण्ठ कुण्ठित हो रहा
मैं चरण-लुण्ठित हो रहा,
मन में तनिक गुन लीजिये
मेरी तनिक सुन लीजिये।" (२०)

"अच्छा, अभिन्न, ठहर अरे
होकर न खिन्न कह अरे !
वह देख आता कौन है
वह साधु-वेशी मौन है। (२१)

काषाय तन पर वस्त्र हैं
पर हाथ में तो शस्त्र हैं !"
सिद्धार्थ भ्रम में पड़ गये
युग दृग उसी पर अड़ गये। (२२)

आगे बढ़े, पूछा तथा—
उसने कही अपनी कथा,
"हे देव ! मैं तो व्याध हूं
खाता मृगों को रांध हूँ। (२३)

मृग साधु समझ न भागते
है भाग्य मेरे जागते,
करता सदा आखेट यों
मैं पालता निज पेट यों। (२४)

मैं अधम हूँ निर्मम निरा !"
उसने कही जब यों गिरा,
सिद्धार्थ तब बोले—"सुनो
तुम पाप-पट को मत बुनो। (२५)

कोई न अपना है यहां
संसार सपना है यहां,
खाओ, कमाओ धर्म से
मन में डरो दुष्कर्म से। (२६)

तुम त्याग दो मृगया अहो
रक्खो सदैव दया अहो,
मन में सदा यदि मनन हो
तो क्यों किसी का हनन हो। (२७)

तुम फेंक दो इस शस्त्र को
दे दो मुझे इस वस्त्र को,
लो स्वर्ण के मुझ से कड़े
वर रत्न जिनमें है जड़े। (२८)

भुजदंड कुण्डल लो अभी
अंशुक समुज्ज्वल लो सभी।"
तब व्याध बोला स्नेह से
निज वस्त्र देकर देह से। (२६)

"क्या दास को टोटा रहा"
वह चरण पर लोटा अहा,
छन्दक पड़ा था शोक मे
मानो न था वह लोक में। (३०)

युग बन्द थे उसके नयन
अब थे कहां करुणायतन,
चीत्कार कर रोया वहीं
मुख अश्रु से धोया वहीं। (३१)

उसने गंवाई निधि वहां
विपरीत था अति विधि वहां,
तरु से बंधा हय था वहा
अब प्राप्त अति भय था वहां। (३२)

उठता हुआ, गिरता हुआ
दु:खाब्धि को तिरता हुआ,
वह चल पड़ा नृप-सौध को
जैसे सुमत कि औध को। (३३)

था अश्व चलता अब नही
पथ में मचलता सब कहीं,
डग रख रहा गिन गिन वहां
करता रहा हिन-हिन वहां। (३४)

था मनुज-तुल्य कराहता
दुख–सिन्धु कथा अवगाहता,
हे राम ! छन्दक आ गया
तम व्योम मे भी छा गया । (३५)

वह काट खाता धाम था
भारी मचा कुहराम था,
इतिवृत्त जब नृप ने सुना
होकर विकल तब शिर धुना । (३६)

छन्दक न मैं नरनाथ हूँ
इस समय हाय अनाथ हूँ,
सिद्धार्थ मेरा है कहां ?
अब तो अंधेरा है यहां । (३७)

है कुसुम कटक में पडा
मैं विकट संकट मे अड़ा,
तुम सच कहो अटका कहाँ
वह विपिन में भटका कहाँ ? (३८)

जब वन गये श्री राम थे
दशरथ गये सुर धाम थे,
पर वज्र मेरा वक्ष है
हा हा न पुत्र समक्ष है । (३९)

फिर अधर फटता नहीं
अब समय कटता नहीं,
मुझ को बड़ी ही लाज है
मेरा कहा युवराज है ? (४०)

मैं वृद्ध होकर हूँ गृही
वह युवक है पुण्यस्पृही,
उसने लिया सन्यास है
मुझ को दिया अति त्रास है । (४१)

मैंने बिगाड़ा क्या भला
उसने दिया मुझको रुला,
क्यों आ गया छप्पर उसे
क्यों आ गया खप्पर उसे ? (४२)

घोड़े यहीं, रथ हैं यही
वन में कहीं पथ है नहीं,
आया दुरन्त निदाघ भी
है विपिन मे गज बाघ भी । (४३)

वन में धरा भोजन कहाँ
उस विजन में है जन कहा,
अवलोक कर अजगर कहाँ
उस को लगेगा डर नहीं ? (४४)

वन मे अनल लग जायेगा
तब वह कहां भग पायेगा,
होगी सुलभ छाया नहीं
कुम्हलायेगी काया वहीं । (४५)

ज्वर-ग्रस्त होगा हा हरे
अति मस्त होगा हा हरे,
उड़ हाथ से तोता गया
अब सूख सुख-सोता गया । (४६)

अब शीत मे या मेह में
होगा कहां किस गेह में ?
जब भूप थे हत बोध से
रानी तभी अवरोध से । (४७)

आकर वहां रोने लगी
निज चेतना खोने लगी,
हे देव ! अब जाऊँ कहां
सिद्धार्थ को पाऊं कहां ? (४८)

लख कर उसे मन मुग्ध था
साग्रह पिलाया दुग्ध था,
अब मृत्यु भी आती नहीं
यह फट रही छाती नहीं । (४९)

भीता बनी हूँ शाप से
मैं डर रही हूँ पाप से,
जग समझ लेगा कैकेयी
मुझ को कहेगा निर्दयी । (५०)

गाली सुनायेंगे सभी
ताली बजायेंगे सभी,
जो आसित मुनि ने था कहा
वह हाय होकर ही रहा । (५१)

कैसे सहूं यह शोक मैं
पाती नहीं आलोक मैं,
यदि देखती तो टोकती
वन मे न जाने रोकती । (५२)

उत्पन्न कर माया मरी
इस भीति से मानो डरी,
तब पय पिला पाला उसे
अब मैं कहूं लाला किसे ! (५३)

मेरा सहारा वह रहा
निज नयन तारा वह रहा,
है हाथ में आयुध नहीं
बालक निरा है बुध नहीं । (५४)

गोपा वहां फिर आ गयी
दुख की घटा घिर छा गयी,
अब सामने थी वह सती
कब चुप हुये वे दम्पती ! (५५)

वे और भी रोने लगे
सुध-बुध सभी खोने लगे,
रोई न किन्तु यशोधरा
सर्वसहा थी वह धरा। (५६)

वह क्षत्रिया धन्या रही
वह सिंहिनी वन्या रही,
सुत को लिये थी गोद मे
वह था बड़े ही मोद में। (५७)

धर धैर्य वह बोली वहा
श्रुति मे सुधा घोली वहां,
हे आर्य! ओ आर्या! सुनो
मत शोक से निज शिर धुनो। (५८)

अति ही बली भवितव्य है
तुमने किया कर्तव्य है,
वे आर्यपुत्र समर्थ हैं
ये रुदन-क्रन्दन व्यर्थ हैं। (५९)

अब आज बालक हैं न वे
क्या धर्म-पालक हैं न वे?
मैं मानती उन को छली
पर जानती उनको बली। (६०)

अब बीत शैशव है गया
यह प्राप्तव्य वैभव है नया,
रोओ नहीं तुम दैन्य से
क्या काम उनको सैन्य से? (६१)

मृगराज कब असहाय है
वह दीन कब निरुपाय है,
वह पशु निरा है बुध नहीं
रखता कभी आयुध नहीं। (६२)

पर विपिन डरता कदा
वह भूख से मरता कदा ?
अतएव यह दु:ख त्याज्य है
तृणवत् उन्हें यह राज्य है। (६३)

अति अश्रुपात न योग्य है
अपशकुन है, अमनोज्ञ है,
वे वीर फिर मिल जायेंगे
मन-मुकुल फिर खिल जायेंगे। (६४)

स्ववारि से मेचक मेघमाला,—दावाग्नि को शीघ्र यथा बुझाती,
किया तथा स्वस्थ्य प्रपीड़ितो को,—यशोधरा ने निज सूक्तियों से। (६५)

सप्तम सर्ग

सिद्धार्थ गये जब गंगा तट
तब देख उन्हें चौंका केवट,
बोला सुत से–"ओ रे नटखट
ला नीर कठौते में झटपट,"
चरणामृत से मैं हृदय भरूँ
भाव सागर को मैं अभय तरूँ। (१)

आये हैं वेश बदल श्रीधन
कर्पूर सदृश है तन शोभन,
अधरों पर है स्मित का नर्तन
छवि देख आज विस्मित है मन,
हूँ भीत कहीं न तरे तरणी
पद रज से यह न बने तरुणी। (२)

"क्या पुनः हुआ है निर्वासन ?
शोभित होगा क्या फिर कानन ?
क्यों विलसित हैं काषाय वसन ?
क्यों है अभीष्ट अति ही निर्जन ?"
पद धोने दो अभिराम मुझे
लगते हो नीरजनाभ मुझे। (३)

तुम सत्य बता दो जीवन धन
क्या वन में है मृगयार्थ गमन ?
निःशस्त्र किन्तु हो शोक-शमन
तो क्या वाँच्छित है तप साधन ?
मैं धोता हूँ पग दृग जल से
ये नख लगते मुक्ता-फल से। (४)

"भावुक ! सुध-बुध क्यों खोता है
क्यों बालक जैसे रोता है ?
क्यों भू मे मोती बोता है
सिकता में क्यों खाता गोता है ?'
तू समझ न राम ललाम मुझे
क्या पद धोने से काम तुझे । (५)
दुर्लभ थी अब तक शुक्ति मुझे
दुर्लभ ही है भव मुक्ति मुझे,
अब दीख पड़ी है युक्ति मुझे
अब सुलभ हुई है मुक्ति मुझे,
यों कह कैवर्त लगा रोने
इन का पद कमल लगा धोने । (६)

अत्यन्त निविड़ निषाद रहा
गूँजा उसका जय-नाद अहा,
सारा भव-जनित विषाद बहा
मन मे असीम आह्लाद रहा,
द्रुत पार उतर सिद्धार्थ गये
अन्वेषण हित परमार्थ नये । (७)
पथ में जनपद उद्यान मिले
बहु धान्य भरे खलिहान मिले,
वन, कुंज, मंजु मैदान मिले
श्रुति-सुखद खगों के गान मिले,
था भीष्म ग्रीष्म अति दुस्सहसा
कुछ दिन में घन घुमड़े सहसा । (८)

"क्या तनती हो भव कूप अये
रूपसि, देखो यह रूप अये,
संन्यासी हैं या भूप अये
लगते अत्यन्त अनूप अये !
आये हैं सोच विमोचन री
अब सफल करो निज लोचन री । (९)

भिक्षार्थ लिये कर में खप्पर
हैं घूम रहे छप्पर-छप्पर
ये चन्द्रचूड़ ही हैं शंकर
अब कौन भला पूजें कंकर,
हैं ये भवाब्धि के सेतु अये
साक्षात् शम्भु वृषकेतु अये।" (१०)

सर्वत्र पौर-जन थे कहते
"कुछ दिन हे तात ! यहीं रहते,
क्यों तुम वर्षातप हो सहते
हम भी ज्ञानाम्बुधि में बहते,"
पर उन्हें राजगृह लखना था
सुस्वादु ज्ञान-फल चखना था। (११)

जब दीख पड़े, पांडव पर्वत
तब मुदित हुये अत्यन्त सुगत,
निर्जन में मुनि करते थे व्रत
दृग्गोचर थे मृग क्रीड़ा-रत,
तृण चरते थे वन में अरने
गिरि के दुकूल से थे झरने। (१२)

शैलों का पुण्य पुराकृत था
क्या जाने कब से संचित था,
अब मूर्तिमान् वह प्रकटित था
भूरुह-समूह भी सस्मित था,
फल-पत्र-पुष्प सब झूम उठे
गौतम चरणों को चूम उठे। (१३)

राजन्य, स्वस्ति ऋषि बोल उठे
निज रसना में रस घोल उठे,
वे उर-कपाट तो खोल उठे
कानों के कुण्डल डोल उठे,
भ्रमरों ने भी घन-घोष किया
बरसा मोती ही तोष किया। (१४)

बोले, किस हेतु यहां आये
काषाय-वसन क्यों मनभाये ?
दृग देख हरिण हैं ललचाये,
क्यों संग नही अनुचर लाये ?
फिर तुष्ट हुये मुनि उत्तर से
शौद्धोदनि ने भी पद परसे। (१५)

कुछ दिन रहकर उस कानन में
वे लीन हुए ज्ञानार्जन में,
आसक्ति न थी धरणी–धन मे
वैराग्य विमल था शुचि मन में,
की विम्बसार ने कोटि कला
परिव्राजक का पर व्रत न टला।(१६)

नृप बोले—"है ही क्या बाधा ?
लो राज्य सखे ! मुझसे आधा,
असमय मे तुमने व्रत साधा
तुम जपो भवन मे श्री राधा
अब रहो राजगृह में सुख से
हो बने तपोधन किस दुख से।" (१७)

"ले राज्य करूंगा क्या राजन् ?
जो लोभी है वह है निर्धन,
जब नश्वर है यह मृण्मय तन
तव है यथेष्ट भिक्षा ही धन,
मैं भव रहस्य हूँ समझ चुका
यम का हविष्य हूँ समझा चुका।" (१८)

यों कह कर मौन तथागत थे
नृप विम्बसार निन्तारत थे,
दर्शन-हित सभ्य समागत थे
कुसुमांञ्जलि भर विटपी नत थे,
इतने में अश्रु प्रवाह बहा,
युवती ने एक कराह कहा। (१९)

"हे दयाम्बुधे ! मैं हूँ आयी
मेरे सुत को अहि ने खाया,
मृत पड़ी देख लो यह काया
अब स्वर्ण-वर्ण है मुरझाया,
सम्मुख मैं खड़ी अभागिन हूँ
जीती मैं पल गिन गिन हूँ। (२०)

यह इन आँखों का था तारा
इस पर मैंने सब कुछ वारा,
अब पीती हूँ आँसू खारा
मेरा तन आज हुआ कारा,
है उजड़ चुका संसार प्रभो
कृपया कर दो उपचार प्रभो।" (२१)

तब बोधिसत्व उससे बोले
"जग जीवित है सुख-दुख को ले,
कोई हँस ले अथवा रो ले
शीतोष्ण दुखद ओले-शोले,
यदि भीख मिले तुझ को सरसों
तो पुत्र जिये तेरा बरसों। (२२)

पर कथन तभी मेरा ऋत हो
आदेश एक तुझ से पूत हो,
जिसका न कभी कोई मृत हो
दे भीख वही जन पुलकित हो,
ला तू सरसों अञ्जलि में भर
तू भगिनि, न बन दुःख से कातर। (२३)

पाकर निदेश मृत-जाया चली
करका-सी वह जा रही घुली,
बेचारी घूमी गली गली
अञ्जली भर सरसों नहीं मिली,
उसको न मिला ऐसा देही
जिसके कि अमर होते गेही।" (२४)

बोली श्रा पुनः तथागत से
"क्या कहूँ निवेदन भारत से,
जन दीख रहे सब श्रारत से
दिन काटूँगी श्रब तप व्रत से,
श्रपगत श्रब मेरा शोक हुश्रा
प्रभु दर्शन से श्रालोक हुश्रा।" (२५)

यह सुन श्रमिताभ हंसे हहा
दाड़िम से दशन लगे श्राहा,
बोले—"दुख-दावा ने दाहा
पर भव-सागर तूने थाहा,
है मुक्ति स्वयं, श्रब मूर्तिमती
तू धन्य हो गयी श्राज सती।" (२६)

फिर पांडव पर्वत छले गये
युवराज यहां से चले गये,
मिल बिम्बसार से सले गये
सुव्यजन तरु-गण से झले गये,
ये निरजना के कूल गये
तप में भव-वैभव भूल गये। (२७)

है प्रेत-तारिणी जहां गया
प्रकटी सुधर्म-संग जहां दया,
नृप-गण ने भी छोड़ी मृगया
था दीख पड़ा पथ जहां नया,
श्रति दिव्य जहां है उरुवेला
गौतम ने कष्ट वहां झेला। (२८)

तप से वे दुर्बल दीन हुए
उनके दृग प्यासे मीन हुए;
भव-जीवन से उन्मुक्त हुये,
गत-लक्षण सब प्राचीन हुये,
श्रात्मा न हीन से लभ्य कहीं
जो नंगा है वह सभ्य नहीं। (२९)

अत्यन्त गये वे लट से
थे अनति दूर ही मरघट से,
तन ढक के मरघट के पट से
चल पड़े किसी विधि वे तट से,
कुछ दूर गये पर हाय गिरे
नृप थे अति ही निरुपाय निरे। (३०)

मारुते ने हाहाकार किया
भू-माता ने आधार दिया,
केकी ने नृत्य विसार दिया
तज भ्रमरों ने गुंजार दिया,
तब अधिक जली उनकी काया
जब दूर हुयी तरु की छाया। (३१)

अब भारभूत प्रतिलोम बना
था भारभूत ही कोम बना,
अध्वर्यु सूर्य तन होम बना
छाया सम्मुख तम-तोम घना,
आया फिर एक अजाय वहां
भयभीत गया वह कांप वहां। (३२)

अति दीन दशा देखी मुनि की
पत्तों की शय्या चुन चुन की,
आतप से रक्षा की उनकी
शाखा टूटी थी जामुन की,
रोपी भू में लेकर खुरपी
आश्चर्य हुआ शाखा पनपी। (३३)

अब मूल-सहित थी हरी भरी
फल-फूल सहित थी हरी भरी,
उसमें छाया भी थी गहरी
उस पर मंडरायी आ भ्रमरी
यह मेघमाल निष्पाप हुआ
उन का मानों मां-बाप हुआ। (३४)

मिरा गया नितान्त शरण्य उन्हें
मिल गया अभिन्न अनन्य उन्हें,
दूरस्थ पिलाया स्तन्य उन्हें
समझा उसने मुनि वन्य उन्हें,
गो-स्तन-पय-धारा दी मुख में
सहचर एकान्त बना दुख में। (३५)

वह उन्हें देखता झुक झुक था
वह उन्हें देखता रुक रुक था,
उसका उर करता धुक धुक था
आतप भी मानो हुतभुक् था,
ज्यों शाखा पनपी जामुन की
हो गयी वही गति उस मुनि की। (३६)

वह मेषपाल अब प्रमुदित था
उसका तन सारा पुलकित था,
मिल गया उसे धन संचित था
मन में संतोष अपरिमित था,
उन्मीलित गौतम के दृग थे
ईर्ष्यालु बने वन के मृग थे। (३७)

"दे दुग्ध मुझे निज भाजन में
है भेद नहीं कुछ जन जन में,
क्यों चिन्तित है अपने मन में
लौटे हैं प्राण पुनः तन मे,"
निकली वाणी यह अति दुःख से
शाक्याधिराज-सुत के मुख से। (३८)

अस्पृश्य निरा है काय मुने
मैं हूं वहेलिया हाय मुने!
मुझ को समझ निरुपाय मुने
हैं खड़ी रंभाती गाय मुने
कैसे कर्म करूं खोटा
मैं क्यों कर दूं प्रभु को लोटा? (३९)

"अपने को समझ न अन्य अरे
तू धरती पर है धन्य अरे,
मैं पहले था राजन्य अरे
अब हूँ तुझसा ही वन्य अरे,"
यों कह कर उसका पात्र लिया
पय पी प्रफुल्ल निज गात किया। (४०)

नयनों को नूतन तेज मिला
आनन को नूतन ओज मिला,
मानो अभिनव अम्भोज खिला
आशंकित हृदय मनोज हिला,
दर्पण-सी अन्तर्दृष्टि हुई
उर में प्रतिबिम्बित सृष्टि हुई। (४१)

"अब लौट अरे घर को भाई
संध्या बीती रजनी आयी,
तारे देते हैं दिखलायी
मैंने शक्ति पुनः पायी,"—
रोया अजाय यह सुन करके
गृह गया किन्तु शिर धुन करके। (४२)

बीती विभावरी प्रातः हुआ
निष्प्रभ तारक-संघात हुआ,
विलुलित पुरइन का पात हुआ
विभु स्नात हुए शुचि गात हुआ,
फिर दीख पड़ा न्यग्रोध उन्हें
था हुआ जहाँ सम्बोध उन्हें। (४३)

जब मिली उन्हें वट की छाया
पुलकित तब शीघ्र हुई काया,
मिल गई उन्हें मानो माया
जिसने था उन को जनमाया,
जम गया वहीं फिर पद्मासन
था बिछा मिला कुश का आसन। (४४)

सब वातावरण पवित्र हुआ
वन नन्दन-तुल्य विचित्र हुआ,
मृगपति भी मृग का मित्र हुआ
पुष्पों-पत्रों से इत्र चुआ,
मानो सुरभित जल-वृष्टि हुई
जिससे मुदिता सब सृष्टि हुई। (४५)

आयो फिर एक वहां अवला
जो कहलाती थी नन्दवला,
थी दिव्यश्च्युता मानो चपला
या मूर्तिमती थी चन्द्रकला,
वह गोप-राज की कन्या थी
इस पुष्प-धरा पर धन्या थी। (४६)

लज्जा के कारण थी सिमटी
हिमवाला जैसी थी प्रकटी,
विधि के हाथों की चित्रपटी
वह हरित-वसन मे थी लिपटी,
लगती तन्वी कालिन्दी सी
उसके ललाट पर बिन्दी थी। (४७)

उसकी वासंती चोली थी
वीणा-सी लगती बोली थी,
जिसमे मधु मिसरी घोली थी
वह रमणी अति ही भोली थी,
उसके संग एक सहेली थी
वह भी अति ही अलवेली थी। (४८)

एकाकी शाक्य-सपूत रहे
वे अति अद्भुत अवधूत रहे,
हरि-से, हर-से उद्भुत रहे
वे विश्ववन्द्य दिवदूत रहे,
सचमुच वे शोक-विमोचन थे
कमनीय कंज-से लोचन थे। (४९)

"हैं क्या ये ही वनदेव ग्रहा
समुपस्थित है स्वयमेव ग्रहा,"
जब रमणी ने साश्चर्य कहा,
उस समय क्षुधित थे ग्रार्य महा,
जब पलक उठा उस को देखा
तब वहां खड़ी थी शशि लेखा। (५०)

थे सुमन-ग्रथित उसके कुन्तल
उद्भासित-सा था दिङ्मंडल,
नत-नयन, किन्तु वे थे चंचल
था फहर रहा उसका ग्रंचल,
वह मृगिगती मनु-राका थी
प्रमदा या पुण्य पताका थी। (५१)

"करके पुनीत दुर्लभ दर्शन
ये सफलीभूत हुए लोचन,
कानन भी वह ग्रति मनभावन था
होकर सनाथ ग्रब है पावन,
श्रद्धा से चल पथ भर योजन
कुछ लायी हूँ प्रभु को भोजन। (५२)

"वनदेव न हूँ, जन हूँ ग्रसुखी
कुल क्षत्रिय है ग्रयि मंजुमती !
मुझ को समझो मत निर्जर री !
तप से तन है ग्रति जर्जर री !!" (५३)

"पर देख तुम्हें ग्रघ-भाग गया
प्रभु ! पुण्य पराकृत जाग गया,
ग्रपने मुख से कुछ भी कह लो
कर किन्तु ग्रनुग्रह ही यह लो।"(५४)

अति कमनीय कलधौत के कटोरे में
पायस पवित्र दिया उन्हें भक्ति-भाव से,
सरसिज-सुवासित-सलिल पिलाया शुचि
ख्याता है सुजाता उसी पुण्य के प्रभाव से। (५५)

सज एक गज आया वन में भवन से
सखी संग गयी चढ़ उस पर प्रमदा,
अंचल फहरता था धर्म-ध्वजा-तुल्य ही
स्वर्ण-यष्टि-सी प्रतीत होती थी प्रियंवदा। (५६)

अष्टम-सर्ग

है यही वह रोहिणी का तीर
और है यह कपिलवस्तु अधीर,
ये खड़े हैं उच्चतम प्रासाद
किन्तु धूमिल और हैं सविषाद। (१)

अब बरसता है नहीं रस-रंग
अब कभी बजता न मंजु मृदंग,
मौन वीणा की हुई झंकार
बन्द उसके हो चुके हैं तार। (२)

अब न होता है कभी भी नृत्य
शांत होकर भृत्य करते कृत्य,
पवन भी सदा लेता उच्छ्वास
है कहीं भी अब न हास-विलास। (३)

गूंजता अब न दीपक-राग
गूंजता रह रहा सदैव विहाग,
मेघ आते व्योम में चुपचाप
रुदन करते सह विकट संताप। (४)

विलस जाते सौध पर थक हार
किन्तु वे सुनते न मधुर मल्हार;
दामिनी है सह न पाती पीर
और देती निज हृदय को चीर। (५)

श्रवण कर उद्घोष अति विकराल
कांप जाते हैं दसो दिग्पाल,
उपवनों के उड़ चुके है रंग
अब नहीं हैं पूर्व के से ढंग। (६)

अब न लगते कुंज ये कमनीय
दैव ! तू है दैत्य दुर्दमनीय,
रजनिगंधा में कहां है गंध
दीखते मद से न अलिगण अंध। (७)

हो चुके तरुवृन्द हैं उज्झंख
फड़ फड़ाते विहग उन पर पंख,
शरद है आता यहां सित-केश
किन्तु पाता हाय अब यह क्लेश। (८)

दीखते हैं कास-कुसुम उदास
व्यक्त करते हैं नहीं अब हास,
अब कहां दीपावली का पर्व
शीश धुनते दीप भी ये सर्व। (९)

रो रहे हैं आज हर-शृंगार
सुमन हैं सित अश्रु की या धार,
अब न ज्योत्स्ना चित्त करती मुग्ध
अब पिलाती है न जग को दुग्ध। (१०)

नृप-निकेतन में न सुनकर गीत
चरण रखता संभल शिशिर सभीत,
कांपता हेमन्त का है गात
निकल पड़ती है न मुंह से बात। (११)

नित्य आता है यहां ऋतुराज
किन्तु होता है न मुदित समाज,
पी कहां जाता पपीहा बोल
कान में जाता गरल पिक घोल। (१२)

अब यहां खेला न जाता फाग
ग्रीष्म चलता विकट झंझावात,
यही दुर्विपाक है सविषाद
जो मग्न करता भूरुहों का गात। (१३)

घूमता अनवरत षट्ऋतु-चक्र
ऋतु हुआ कब किन्तु यह विधि वक्र,
क्या पता सिद्धार्थ हैं किस देश
स्वजन चिन्तित क्यों न पावें क्लेश। (१४)

नृपति-दम्पति क्यों न हों मृतप्राय
पुत्र ही है जब विजन में हाय,
विविध बुध करते सदा उपदेश
सूखता शोकाब्धि पर न अशेष। (१५)

हैं दयामय हर तथा हेरम्ब
जो न करते भक्त हेतु विलम्ब,
वे न देते रम्य राहुल रत्न
व्यर्थ होते तो समस्त प्रयत्न। (१६)

राजकुल का हो न पाता त्राण
निकल जाते प्राणियों के प्राण,
"धन्य तेरा शिशु ! सुखद ससार
कौन जड़ करता न तुझ को प्यार ?" (१७)

देख कर तेरा मनोहर रूप
लुब्ध होते हैं भिखारी भूप,
एक उठती हर्ष की हिलोर
नाच उठता शीघ्र ही मन-मोर। (१८)

स्वर्ग में है पारिजात प्रसून
किन्तु वह है बहुत तुझसे न्यून,
रत्न है कोई न तेरे तुल्य
कौन जन तेरा लगाये मूल्य ? (१९)

यह कहां पाया गुलाबी गात
और था अब तक कहां अज्ञात ?
कुन्द-कमल-सदृश है कमनीय,
हे ललित ! तू नित्य है नमनीय। (२०)

खेलता जब पद उछाल-उछाल
सुजन होते तब नितान्त निहाल,
तू सदा करता सुधा का पान
है अतः रहता सदा अम्लान। (२१)

जग-जलधि के रे अमल अम्भोज
है अलौकिक अमित तुझ मे ओज,
देखकर नख-शिख सलोनी सृष्टि
सफल निज को मानती है दृष्टि। (२२)

गगन से तू अवतरित है इन्दु
या मरुस्थल मे सुधा की विन्दु ?
सौम्य ! तेरा देख सरल स्वभाव
उमड पड़ते भव्य मन मे भाव। (२३)

घूम जाता युग्म चक्षु-समक्ष
कस-कारागार का वह कक्ष,
थे जहा वे देवकी–वसुदेव
हरि हुये जिनके कि सुत स्वयमेव। (२४)

क्यों भला विस्मित न हो यह चित्त
सूप में रख पुत्र रूपी वित्त,
चल पड़े वसुदेव आधी रात
हो रहा अवसन्न उनका गात। (२५)

सामने थी तरणिजा की धार
और गोकुल ग्राम था उस पार,
गगन से थी हो रही कुछ वृष्टि
चौंध जाती दामिनी से दृष्टि। (२६)

पवन देता नीर को झकझोर
निर्झरी मे उठ रही हिलकोर,
थे खड़े वसुदेव दम को साध
था नही सरिता-सलिल निर्वाध। (२७)

डर रहे थे हो कहीं न प्रभात
बीत जाये यह न काली रात,
यह घता उन के नयन से नीर
हो गये प्रति ही प्रकम्पित धीर। (२८)

है यहां भी मात्स्य कच्छप नक्र
चल रहा दुर्दैव का भी चक्र,
हाय ज्यों ज्यों बढ़ रहा है नीर
कांपता त्यों त्यों अधीर शरीर। (२९)

अनिल करता सर्प-सा फुंकार
शीश पर शिशु कर रहा हुंकार,
वेग कर फिर अगर जल को भग्न
हो गये क्षत्रिय प्रवर वे व्यग्र। (३०)

विभु-चरण छू किन्तु जल था शान्त
पार पहुंचे देवकी के कान्त,
अर्कजा-पद-रज लगाया भाल
था चतुर्दिक् हो रहा भूचाल। (३१)

चल पड़े अविलम्ब गोकुल ग्राम
और पाया नन्द नृप का धाम,
कर लिया जब कार्य निज सम्पन्न
पुनः बन्दीगृह हो गये प्रच्छन्न। (३२)

बालिका थी कंस के अब हाथ
काटने उसका चला वह माथ,
किन्तु नभ में उड़ गयी तत्काल
कंस ने ठोका वहां निज भाल। (३३)

"क्रूर! करले और अत्याचार
काल तेरे कृष्ण हैं सुकुमार",
गगन में गूंजा भयंकर नाद
कंस मूच्छित हो गया सविषाद। (३४)

उधर गोकुल में हुआ अति हर्ष
    नन्द-पशुपति का बढ़ा उत्कर्ष,
धन्य है तू धन्य विश्वाधार
    बन गया अखिलेश गोपकुमार। (३५)

पूतना करने चली थी छद्म
    किन्तु पहुंची शीघ्र अन्तक सद्म,
हे विभो ! तू था पयोमुख बाल
    तदपि उसका बन गया तू काल। (३६)

कौन खल पाया न तुझ से दंड
    हत हुए तुझ से सतत उद्दंड,
है न तुझ-सा अन्य कोई शूर
    हो गया भयभीत कालिय क्रूर। (३७)

शैल का तूने बनाया छत्र
    दीन बन सुरराज आया तत्र,
ऋजु हुआ अत्यन्त ही वह वक्र
    चरण-लुंठित हो गया वह शक्र। (३८)

गल न पायी कंस की भी दाल
    रह गया केवल बजाता गाल,
और पहुंचा अधम वह परलोक
    तम टला फैला अतुल आलोक। (३९)

पौत्र-मुख लख कपिलवस्तु-नरेश
    सोचते यों हरि-चरित अनिमेष,
बढ़ रहा राहुल सदा चितचोर
    हो गया वह आज दिव्य किशोर। (४०)

बैठकर कर नृप के सुखद-उत्संग
    श्रवण करता नित्य पुण्य-प्रसंग,
पूछता जब निज पिता का नाम
    रुदन करते नृपति तब गुण-ग्राम। (४१)

पोंछ देता वह दृगों का नीर
हरण कर लेता हृदय की पीर,
दौड़ता जाता तथा फिर गेह
बैठ मां की गोद में सस्नेह। (४२)

कथन करता भूप का वृत्तान्त
और जाता स्वयं उद्भ्रान्त,
पूछता फिर कर दुराग्रह नाम
और उससे वह बताती वाम। (४३)

'सिद्ध' के आगे लगादें 'अर्थ'
और तू बातें न कर अब व्यर्थ,
पुत्र को हो जाय दुख न दुरन्त
अतः गोपा रो न पाती हंत। (४४)

और दिखलाती उसे कुछ चित्र
चित्रशाला मे विचित्र-विचित्र,
दिव्य दृश्य विलोक कर वह बाल
चित्र-सा बनता स्वयं तत्काल। (४५)

धाम था आनन्द का वह स्थान
उल्लिखित थे भित्तिचित्र ललाम,
था कहीं पर भी न फीका रंग
थे यथावत् वृक्ष औ विहग। (४६)

जल तथा तल हो रहे थे ज्ञात
समय होते विदित सायं प्रातः,
शैल कानन और पुण्य-प्रपात
दृष्टिगत होते सभी अवदात। (४७)

सिद्धार्थ के ही चरित्र को वे व्यक्त करते चित्र थे,
उत्पत्ति से संन्यास तक के दृश्य परम पवित्र थे।
माणिक्य-मंदिर में वहां अंकित सहस्रों श्लोक थे,
रवि-रश्मि-सम वितरित तथा जो कर रहे आलोक थे ॥(४८)

प्रति रुचिर रत्नों से जड़े अनवद्य अक्षर थे सभी,
अवलोक कर कल-कक्ष को विस्मित चराचर थे सभी।
विधि-सृष्टि से अतिरिक्त मानों मधुमयी वह सृष्टि थी,
उस रंगशाला में सतत होती सुधा की वृष्टि थी॥ (४६)

प्रजावती हैं जननी यशोदा,
रोना जिन्हें द्वापर से बदा है।
विमुग्ध हो दुग्ध जिसे पिलाया,
किया उसी ने छल सर्वदा है॥ (५०)

नवम सर्ग

मुनि को अवलोक वहाँ वन मे
खल मार सशंक हुआ मन में,
उनसे वह पामर बोल उठा
श्रुति में मधु ज्यों वह घोल उठा। (१)

"युवराज ! अखंड समाधि तजो
अपने मन की तुम आधि तजो,
तुम दीन दरिद्र न ब्राह्मण हो
सहते अति कष्ट अकारण हो। (२)

तुम क्षत्रिय-वंश विभूषण हो
अपने कुल के तुम पूषण हो,
सुकुमार कुमार ! चलो वन से
सुख प्राप्त करो अपने धन से। (३)

कितने तुम हाय अधन्य अहो
लगते तुम तो अब वन्य अहो !
मृदुता अब है अवशेष नहीं
द्युति का अब है लवलेश नहीं। (४)

पद-पंकज में चुभ शूल रहे
अब भी वन में तुम भूल रहे,
कितने रमणीक निकेतन थे
उड़ते रहते कल केतन थे। (५)

अति ज्योतित थे मणिदीप जहाँ
रहते शत नम्र महीप वहाँ,
वर वाद्य सदा बजते रहते
गज-वाजि सदा राजते रहते। (६)

उपलब्ध तुम्हें सुख साज रहे
तुम दिव्य अहा युवराज रहे,
लिपटे अब हो वट के द्रुम से
लगते मुझ को तुम निर्मम से। (७)

कहते जिसको तुम अम्ब रहे
जिसके तुम हो अवलम्ब रहे,
कुछ मोह न क्या उसके प्रति है
मति ही भ्रमिता तव सम्प्रति है।" (८)

ममता वह है सच मूर्तिमती
दुखिया अब है वह हाय सती,
अति क्षीण हुआ उसका तन है
कितने दिन का अब जीवन है? (९)

वह व्यर्थ प्रलाप किया करती
दिन रात विलाप किया करती,
"सुत है अब तू किस कानन में
दु:ख है सहता किस निर्जन में? (१०)

परिव्राजक का धर वेश अरे
रहता अब तू किस देश अरे,
दिखला मुझको मुख तू अपना
जग में अब तो सुख है अपना। (११)

कर में अब है धनु-बाण नहीं
कटि में कमनीय कृपाण नहीं,
पद में अब हा न उपानह है
वन में अब हाय भयावह है। (१२)

बिखरे रहते कुश-कंटक हैं
सब ओर वहां अति संकट है,
अति हिंसक हैं सब जीव वहां
भयकारक जन्तु अजीव वहां। (१३)

मृगराज दहाड़ किया करते
पथ रोक पहाड़ लिया करते,
वन है सब भांति दुरूह अरे
तरु हैं अरु झाड़-समूह अरे। (१४)

रहते खल भील कुचैल वहां
नर भक्षक प्रेत चुड़ैल वहां,
अति भीषण भूत पिशाच वही
करते रहते नित नाच वही। (१५)

रहता दिन में तम-तोम वहां,
सकते दृग् देख न व्योम वहां,
रहते अति निर्भय सर्प वहां
रहते गजराज सदर्प वहां। (१६)

कलहंस-दुकूल न हैं तन में
इस कारण चिन्तित हूं मन में,
ऋतु का क्रम है बदला करता
तन में हिम कम्पन क्या भरता? (१७)

बहता अति मारुत शीतल है
कंपता अति ही तब भूतल है,
दिननायक मोद दिया करते,
जन पावक गोद लिया करते। (१८)

परिवर्तित ऋतु यों मस्त हुए
पर प्राण सदैव प्रतप्त हुए,
मुख देख सकी सुत का न हरे!
सुख देख सकी सुत का न हरे!"(१६)

तुम वीर! न क्यों अवधूत बनो
कुल में अपने न कपूत बनो,
अब भी उसके सुख हेतु बनो
विपदाम्बुधि के तुम सेतु बनो। (२०)

नृप रोदन है करते रहते
दुःख-सागर में तरते रहते,
प्रति ही तुम लालित थे इनके
प्रति ही तुम पालित थे इनके। (२१)

उनके प्रति ही तुम श्रेय रहे
उनके प्रति ही तुम प्रेय रहे,
उनके प्रति ही तुम ध्येय रहे
उनके प्रति ही तुम गेय रहे। (२२)

तुम कार्य न यों प्रतिकूल करो
न दुराग्रह से फिर भूल करो,
उन के पद-पंकज की रज लो
मुझसे हय लो, रथ लो, गज लो। (२३)

स्वजनादिक से अनुराग करो
न विमूढ़ बनो तप-त्याग करो,
बनना है अब नरराज तुम्हें
धरना है अब सिरताज तुम्हें। (२४)

फिर कन्थक खोज रहा तुमको
फिर छन्दक खोज रहा तुमको,
गृह जाकर के अभिशाप हरो
कृपया उनका तुम ताप हरो। (२५)

तुम से यह सेवित क्यों वन है?
वह निर्जन-तुल्य निकेतन है,
दुःख से कहते सब किंकर है
अब तो परिणाम भयंकर है। (२६)

अभिराम हुये अनिकेतन पति
तज दे मन ही न कहीं युवती,
ममता-वश राहुल भी न मरे
भवसिन्धु अपार तरे न तरे। (२७)

नव यौवन है रस-रंग करो
अपने व्रत को तुम भंग करो,
चुपके आ पहुँचे तुम वन में
कुछ सोच करो अपने मन में। (२८)

विरहानल में रमणी जलती
कर-युग्म सदा वह है मलती,
उसका मत यों उपहास करो
सविनोद सदैव विलास करो। (२६)

तुम त्याग चुके सुत को अपने
फिर देख रहे सुख के सपने,
वह नित्य विलाप किया करता
तुतला कर शाप दिया करता। (३०)

किस हेतु भला तुम बाप बने
करते कितने तुम पाप घने,
उसको तुमने कब मोद दिया
उसको तुमने कब गोद लिया ? (३१)

वह सप्तम वर्ष व्यतीत हुआ
उससे विधि ही विपरीत हुआ,
तुम जीवित होकर भी मृत हो
अविवेक महासुर से धुत हो। (३२)

उस बालक का यह शैशव है
गृह में जन हैं, धन-वैभव है,
उसको तुम क्यों न प्रसन्न करो
कृमि-सा न अभिन्न ! निरन्न मरो। (३३)

ध्यानस्थ शाक्य-मुनि थे, न हिले, न डोले
वे मौन ही सतत थे कुछ भी न बोले,
लीला रची कुसुम-सायक ने निराली
जाना स्वकीय-रिपु ही उनको कपाली। (३४)

आये सभी स्वजन वे तज राजधानी
जाती दशा न उनकी मुझसे बखानी,
कारुण्य-मूर्ति सब शोक-निमग्न थे वे
भारी विपत्ति सह के अवसन्न थे वे। (३५)

शिविर सुन्दर शीघ्र तने वहां
विजन भी जन संकुल हो गया,
लख विषण्ण वहां जनकादि को
सुगत का मन व्याकुल हो गया। (३६)

"मैं शुद्धोदन
आया हूँ वन,
प्रिय पुत्र पिता हूँ तेरा। (३७)

युग दृग मीचे
वट के नीचे,
क्यों डाल दिया है डेरा ? (३८)

कुछ बोल अरे
मधु घोल अरे,
करना है रैन-बसेरा। (३९)

है सैन्य यहीं
कुछ दैन्य नहीं
परिवार यहीं है मेरा। (४०)

निर्मित हैं पथ
प्रस्तुत हैं रथ,
है दूर सौम्य सवेरा। (४१)

चल सद्म वहीं
कर छद्म नहीं,
ममता का तोड़ न घेरा। (४२)

पट-वितान यही वन में तने
रह विभा भर तू सुख से यहीं,
उपल-तुल्य बना कब से अरे
कथन भी करता मुख से नहीं।" (४३)

"जननी प्रजावती मैं तुझको मना रही हूँ,
अपनी व्यथा-कथा मैं तुझ को सुना रही हूँ।"
"मा एक बार कह दे, मुख खोल शीघ्र बेटा!
आशा मुझे लगी है, तू बोल शीघ्र बेटा!! (४४)

पाला था तुझ को वहां सदन में, मैंने बड़े प्रेम से
लाला थी कहती सदैव सुख से, सारी हरी व्याधियां।
पाती थी सुख-शांति देख तुझ को, खाती खिलाके सदा
हा हा पुत्र! वही न रंच मुझको तू नैन से देखता॥ (४५)
वृद्धा हूँ अवलम्ब हीन अति हूँ, हैं हाथ भी कांपते
नैनों में कुछ भी न ज्योति अब है, दे तू सहारा मुझे।
कोई बात न पूछता अनसुनी है टाल देते सभी
होता जो गृह में वहां सुवन! तो, पाती भला दु.ख क्यों? (४६)

माना हूँ इस हेतु दु.ख सुनके तेरा बड़ी हूँ दुखी,
उत्पीड़ा सहता यहां विजन में हे वत्स! तू तो वृथा
तेरे हेतु सदा विलाप करके, हा हंत! अंधी बनी,
बोली जो सुन लूँ यहां तनिक तो ये नेत्र मेरे खुले॥" (४७)

खोला न रंच मुख भी मुनि सुव्रती ने
देखा नहीं नयन से नृप-दम्पती को,
रो रो गये शिविर में दुःख से बड़े वे
हा अन्ततः युगल वे करते वहां क्या? (४८)

यशोधरा आ पहुँची दुखी हो
उतावली वन अति बावली-सी।
न हास ही था, न विलास ही था
नितान्त ही था मुरझी कली-सी॥ (४९)

"उठो, उठो क्यों वन में पड़े हो
दुराग्रही से तुम क्यों अड़े हो,
आई यहाँ हूँ तुमको मनाने
व्यथा-कथा मैं अपनी सुनाने। (५०)

क्यों चोर जैसे तुम भाग आये
निकेत को क्यों तुम त्याग आये,
सोचा नहीं, है यह तो नवेली
कैसे रहेगी गृह में अकेली ? (५१)

मेरी कहानी अब भी सुनोगे
स्व शीश को क्या कुछ भी धुनोगे,
प्राणेश ! एहो दृग-युग्म खोलो
सुमुत्सुका हूँ कुछ शब्द बोलो। (५२)

दुःखाब्धि के सेतु न क्या बनोगे
स्ववंश के केतु न क्या बनोगे,
अरण्य मे ही तुम क्या रहोगे
नितान्त आपत्ति सदा सहोगे ? (५३)

क्या याद है छन्दक की न आती ?
क्या याद है कन्थक की न आती ?
हैं सत्य ही वे अति नीच दोनो
आये यहां हैं वन-बीच दोनों। (५४)

माता पिता की तुमने न मानी
तुम्हें कहेगा जन कौन ज्ञानी ?
क्या बात मेरी तुम मान लोगे
मानी ! मुझे भी कुछ मान दोगे ? (५५)

वीरांगना रो सकती नहीं है
कहे बिना भी रुकती नहीं है,
सोचो, अहो ! सप्तम वर्ष बीता
चलो पढो संग मदीय गीता। (५६)

संन्यासिनी ही बन के रहूँगी
उदासिनी ही बन के रहूँगी,
न प्रेम-संलाप कभी करूँगी
समेत संताप भले ही मरूँगी। (५७)

छोटा अभी है सुत भी तुम्हारा
देगा इसे कौन भला सहारा,
सायी इसे हूँ आर्य ! गोदधारी
अशोक हो, तुम समोद धारो।" (५८)

समाधि भंग हो सकी नहीं वहां कुमार की
हिले न वे, डुले न वे, चली न एक मार की,
इसी प्रकार शर्वरी वह व्यतीत हो गयी
अनग-चित्तवृत्ति भी नितान्त भीत हो गयी। (५९)

सिद्धार्थ को मार ! न तू छलेगा
प्रपंच तेरा न यहां चलेगा,
जा, भाग जा, रे खल, नीच, पापी
आया कहां से वन मे सुरा पी! (६०)

व्यूह-वनिताओं का भी हार मान गया जब
क्रुद्ध हुआ मनसिज तब निज मन में,
समझ न सका वह, कौन है पुरुष यह
आये विरूपाक्ष है क्या तप-हेतु वन मे ? (६१)

ताण्डव प्रचण्ड फिर कही नही रुद्र करें
पावक प्रबल लगे फिर नही तन मे,
"मरता न करता क्या" उक्ति चरितार्थ यही
करने लगा रतीश विकट विजन मे। (६२)

———

हाय बड़ा क्लेश है
रात भी अशेष है,
नाच रहे भूत हैं
यम के ये दूत हैं। (७)

नाचते लुकाड़ हैं
चबा रहे हाड़ हैं,
जीभ लपलपा रहे
अंग कंपकँपा रहे। (८)

दांत हैं बड़े बड़े
घाव हैं सड़े सड़े,
बह रहे रुधिर तथा
अकथनीय है कथा। (९)

धार मुण्डमाल को
और ओढ़ खाल को,
तालियां बजा रहे
सैन्य हैं सजा रहे। (१०)

ये विपुल विवर्ण हैं
कुम्भ-तुल्य कर्ण हैं,
करते चीत्कार हैं
धारे तलवार हैं। (११)

नख भी हैं सूप से
और नैन कूप-से,
विकृत अति वेश है
एडी तक केश हैं। (१२)

डाकिनी पिशाचिनी
संग, हैं भयावनी,
अंग, पर न वस्त्र हैं
हाथों में शस्त्र हैं। (१३)

होती स्मृति भ्रष्ट जब
होती मति नष्ट तब,
वीर ! बुद्धि ह्रास है
तब कहां विकास है। (२१)

जब नहीं विकास है
तब कहां प्रकाश है ?
जब नहीं प्रकाश है
निश्चित तब नाश है। (२२)

गूढ़ यह रहस्य है,
तथ्य सत्य अवश्य है।

देख देख वीर वर
फल्गु-सरित तीर पर,
यह अनंग आ गया
रण-प्रसंग छा गया। (२३)

मारुत प्रतिकूल है
उड़ती अब धूल है,
घोर घटाटोप है
यह अनंग कोप है। (२४)

हड़हड़ ध्वनि हो रही
घड़घड़ ध्वनि हो रही,
व्याकुल संसार है
नौका मझधार है। (२५)

पेड़ हैं उखड़ रहे
आपस में भिड़ रहे,
होती है गर्जना
अग—जग है दुर्मना। (२६)

क्यों प्रकाश हो गया
अब विनाश हो गया,
चन्द्र टूट कर गिरा
व्योम फूट कर गिरा। (२७)

तारे हैं टूटते
अग्निबाण छूटते,
दावानल लग गया
पावक है जग गया। (२८)

वृक्ष सब बड़े बड़े
जल रहे खड़े खड़े,
जल रही हरी हरी
सहम सहम वल्लरी। (२९)

जलते फल फूल हैं
जल रहे बबूल हैं,
जलती हैं ईमली
जलते हैं शाल्मली। (३०)

जलते शिरीष हैं
धुनते ये शीश हैं,
जलते ये आक हैं
जलते ये ढाक हैं। (३१)

जलते जवासे हैं
हिलते हवा से हैं,
दृश्य हैं भयावने
जलते हैं वन घने। (३२)

जल रहे कनेर हैं
भस्मसात् बेर हैं,
वेणु तड़तड़ा रहे
बिल्व पड़पड़ा रहे। (३३)

आग है भयंकरी
अति ही प्रलयंकरी,
जल रहे अशोक हैं
रो रहे सशोक हैं। (३४)

जलती लतायें हैं
जलती वितायें हैं,
जलती हैं झाड़ियां
जलती फुलवाड़ियां। (३५)

आ रही लपट अरे
जल न जाय वर अरे!
शावय! भाग भाग रे
देख लगी आग रे! (३६)

आ गया प्रलय अभी
जीव हैं सभय सभी,
व्याकुल विहंग हैं
फीके सब रंग हैं। (३७)

जलते ये मोर हैं
जल रहे चकोर हैं,
जलते रहे कपोत हैं
जलते खद्योत हैं। (३८)

जलते सब कीर हैं
मरते सह पीर हैं,
हैं हरिण उछल रहे
उल्का से बस रहे। (३९)

जलते वाराह हैं
पा रहे न राह हैं,
जलते ये शाल हैं
जो वड़े विशाल हैं। (४०)

जल रहे लवंग हैं
जल रहे प्लवंग हैं,
पारिजात जल रहे
वृक्ष अति जल रहे। (४१)

जल रहे रसाल हैं
जल रहे तमाल हैं,
जलते कचनार हैं
जल रहे अनार हैं। (४२)

धुनते शिर शिंशपा
गात गये कँपकँपा,
आग अति कराल से
झुलसे हैं फालसे। (४३)

जल रहे कदम्ब हैं
जलते तरु निम्ब हैं,
जलते जम्बीर हैं
धर रहे न धीर हैं। (४४)

काँपती वसुन्धरा
जल रही यशोधरा,
राहुल है जल रहा
हैं सभी विकल महा। (४५)

शुद्धोदन मर रहे
हाय रुदन कर रहे,
छोड़ तू समाधि रे
कैसी है व्याधि रे! (४६)

जल रहे सदेह रे
तू बना विदेह रे!
वन्हि है विकट अरे
जल रहे सकर अरे! (४७)

तप है किस काम का
ध्यान है न धाम का,
अम्ब वह दयावती
जल रही प्रजावती। (४८)

हो रहा विद्रोह रे
अब भी कर मोह रे,
उसने है पाला तुझे
कह कर लाला तुझे। (४९)

देख वहीं चीखती
तज समाधि रे यती,
हाय दया दृष्टि कर
करुणा की वृष्टि कर। (५०)

जल चुके साथी हैं
जल चुके हाथी हैं,
तेरा है व्रत यही
त बना दुराग्रही। (५१)

छन्दक है जल चुका
कन्थक है जल चुका,
जल चुका विजन अरे
जल सभी स्वजन मरे। (५२)

हो चुका प्रलय यहीं
अब विकल विलप यहीं,
हार कर मदन गिरा
हो रही गगन गिरा। (५३)

पुण्य का, उदय हुआ
ईश, अब सदय हुआ,
पाप मिट गया स्वयं
ताप मिट गया स्वयं। (५४)

एक इन्द्रजाल था
कांप गया काल था,
सजा रंगमंच था
मिथ्या प्रपंच था। (५५)

पूर्ववत् प्रकृति हुयी
विश्व में सुमति हुयी,
विलसित तरु-पुंज हैं
मंजु मंजु कुंज हैं। (५६)

हरे हरे पात हैं
ये न भस्मसात् हैं,
हैं प्रसन्न खग सभी
हैं प्रसन्न मृग सभी। (५७)

हैं न लय प्रलय यहाँ
हैं सभी अभय यहाँ,
हो चुका विहान है
स्वच्छ नभ-वितान है। (५८)

पुलकित अब सृष्टि है
सुरभित जल वृष्टि है,
देव हैं खड़े सभी
बजती है दुन्दुभी। (५९)

फहर रहे केतु हैं
स्वागत के हेतु हैं,
शाक्य है प्रबुद्ध तू
सम्यक् सम्बुद्ध तू। (६०)

व्रत से डिगा नहीं
भय से भगा नहीं,
देखता प्रपंच था
डरता न रंच था। (६१)

आज श्रेय तू बना
आज प्रेय तू बना,
आज गेय तू बना
आज ध्येय तू बना। (६२)

सफला है साधना
सफला है कामना,
सफला है आराधना
धन्य है महामना। (६३)

दशों दिशाओं के देवों ने विभु का गौरव-गान किया,
भिक्षा—पात्र तथा काषाय–वसन देकर सम्मान किया।
मुण्डित होकर भी आनन को अति ही अनुपम ओज मिला,
विश्ववारि निधि में लोकोत्तर वह अभिनव अम्भोज खिला॥ (६४)

एकादश सर्ग

ऋषि पत्तन में चक्र प्रवर्तन
हो चुका है धर्म का,
क्यों न मिलेगा भला मधुर फल
हम को भी शुभ कर्म का। (१)

पुण्य-पताका फहर रही है
अब सिद्धार्थ महान् की,
कल-कल करती अविकल बहती
भू पर गंगा ज्ञान की। (२)

जन-नायक अब घूम रहे हैं
संन्यासी के वेश में,
मुक्ति खड़ी है पुष्पांजलि ले
अब दासी के वेश में। (३)

सत्य अहिंसा का बजता अब
देखो कैसा तूर्य है ?
अब शशांक जैसा ही शीतल
लगता सुन्दर सूर्य है। (४)

जन-जीवन कितना पावन है
नहीं द्वेष का लेश है,
सिंचित सुधा समान लग रहा
प्यारा आज स्वदेश है। (५)

हिंसा मय अब कर्म काण्ड का
नहीं वितण्डावाद है,
भरा हुआ जन-जन के मन में
अब असीम आह्लाद है। (६)

हरी भरी हो रही धरा है
हल की पैनी नोक से,
अब सामन्त न चूस रहे हैं
कृषक जनों को जोंक से। (७)

प्रमुदित होकर नरपति जाते
झोपड़ियों की ओर हैं,
कंठ लगा मिलते दीनों से
वे अति प्रेम-विभोर हैं। (८)

उटजों का उपहास न करतीं
उनकी आज हवेलियाँ,
भूल गये श्रम के आगे वे
मनभाती रंग-रेलियाँ। (९)

निज भुज-बल को तोल रहे वे
खुर्पी और कुदाल से,
काम नहीं लेते हैं कुछ भी
अब कृपाण या ढाल से। (१०)

तोड़ मुकुट-मणियों को करते
निज हाथों से दान हैं,
रूखी रोटी में ही पाते
अब वे खाद्य महान हैं। (११)

जन-जन में है स्फूर्ति आ गयी
मिटा असुर आलस्य है,
दीख रहा अपनी आंखों से
'अपना' भव्य भविष्य है। (१२)

तिल-तन्दुल-घृत को अब स्वाहा
करते कहीं न लोग हैं,
दुग्ध पान कर हो बलिष्ठ अति
करते सब उद्योग हैं। (१३)

अन्य कामना शेष नहीं है
सम्मुख अब कैवल्य है,
इस जीवन में ही पा लेना
हम को अब साफल्य है। (१४)

शास्ता के पद-चिन्हों पर ही
चलना अपना ध्येय है,
विमल उन्हीं के वचन मानने
में ही अपना श्रेय है। (१५)

पापी पच पच कर मरते हैं
दारुण कर्म-विपाक मे,
कल्पवृक्ष को छोड़ भटकते
जाकर के अब आक में। (१६)

साहस और शक्ति का करना
हम को उचित प्रयोग है,
ध्यान सदा रखना है हमको
दिव्य कर्म ही योग है। (१७)

सुखदायी संयोग नहीं है
दुखदायी न वियोग है,
शोकाकुल होना मानव का
एक मानसिक रोग है। (१८)

खोना है सन्तुलन न मन का
हमें कभी भी सोक में,
हम को तो संस्थित रहना है
सतत ज्ञानालोक में। (१९)

कपिलवस्तु तू मोद मना अब
आये हैं अमिताभ रे,
तू युवराज न उन्हें समझना
वे हैं नीरजनाभ रे। (२०)

वनिताओं तुम मंगल गाओ
और सजाओ आरती,
सुर नर मुनि जय बोल रहे हैं
सुनो सुना तुम भारती। (२१)

सजे हुये ये राजमार्ग हैं
देखो वन्दनवार से,
तोरण कैसे शोभित होते
सुरभित सुरभित हार से। (२२)

जल-गुलाब से सिंचित पथ हैं
उड़ती कहीं न धूल है,
जो हृदयों में खटक रहा था
निकल गया वह शूल है। (२३)

फहर रहे हैं झंडे अगणित
बजती हैं शहनाइयां,
रह रह कर अंगड़ाई ले ले
झूम रही अमराइयां। (२४)

उमड़ा भारी जन-समुद्र है
अति ही हर्ष हिलोर है,
व्योम वितान फटा जाता है
ऐसा भारी शोर है। (२५)

आज कलंक मिटे छन्दक के
रोम गये हैं गिनगिना,
मंजु मन्दुरा में कन्थक भी
आज रहा है हिनहिना। (२६)

सज्जित गजराजों से शोभित
हैं आलान-स्तम्भ भी,
मत्त द्विरद ये हर लेते हैं
एरावत के दम्भ भी। (२७)

प्रजावती शुद्धोदन के अब
भाग्योदय हैं हो चुके,
पुण्य परायण आप्तकाम वे
आज उभय हैं हो चुके। (२८)

भीख दे रही राहुल को अब
वह यशोधरा मानिनी,
महनीया महिला है यह भी
भू पर गौरव शालिनी। (२९)

राजमहल में चहल पहल है
ज्योतित रत्न प्रदीप हैं,
आज स्वर्ग मे सूर्यवंश के
पुलकित सकल महीप हैं। (३०)

दैन्य दुरित अब दूर हो रहे
देखो जम्बू द्वीप से,
आज कोटिशः दीप जले हैं
प्रोज्ज्वल एक प्रदीप से। (३१)

आज हृदय से हृदय मिले हैं
जाग गया अनुराग है,
आज गढा धन हमें मिला है
जिसमें सबका भाग है। (३२)

मिथ्या आडम्बर में हम को
स्वल्प नहीं विश्वास है,
अब प्राचीन बदलना हमको
निश्चय ही इतिहास है। (३३)

अब न कभी हम फंस सकते हैं
वैभव और विलास में,
प्रतिपद विधु-सा लीन रहेंगे
हम आत्मीय विकास में।।

हिमगिरि से आ सेतुबन्ध तक
क्रीड़ा करती भारती,
'संघे शक्तिः कलौ युगे' का
मंत्र सदा उच्चारती। (३५)

छैनी और हथौड़े से हैं
शिल्पी गढ़ते मूर्तियां,
पाषाणों में प्राण-प्रतिष्ठा
कर भरते हैं स्फूर्तियां। (३६)

है स्वदेश ! तू धन्य धरा पर
तेरा अति उत्कर्ष है,
तेरी उपमा है तुझसे ही
तू ही भारत वर्ष है। (३७)

करता रहता नित्य अनुग्रह
तुझ पर विश्वाधार है,
लीला ललित दिखाया करता
लेकर वह अवतार है। (३८)

फूलों और फलों का देती
षट् ऋतुयें उपहार हैं,
सरितायें मर्यादा में बह
करती सुख-सचार हैं। (३९)

कभी प्रकृति मे विकृति न आती
खग, मृग भी स्वच्छन्द हैं,
कृषि पुष्ट नयनिष्ठ मनुज है,
न्यायालय सब बन्द हैं। (४०)

अन्तर है न प्रजा राजा मे
पूर्ण सुराजकवाद है,
धर्म-ध्वजा की छाया में
जनतंत्र यहां साह्लाद है। (४१)

दीख रही हैं नही ईतियां
और कहीं भी भीतियां,
मूल सहित मिट गयी यहां से
अपने आप कुरीतियां। (४२)

वर्ग भेद है नहीं यहां पर
मिटी घोर अस्पृश्यता,
विश्व आज आश्चर्यचकित है
देख हमारी सभ्यता। (४३)

जन्म मृत्यु के भी रहस्य को
हम अवश्य ही जानते,
शत्रु मित्र जो छिपे हृदय मे
उन को हैं पहचानते। (४४)

ऋणी हमारे लंका तिब्बत
स्याम चीन जापान हैं,
कृतज्ञता से शीश झुकाकर
करते गौरव—गान हैं। (४५)

ह्वेन च्यांग मैगस्थनीज
के भी मन अति ही मुग्ध हैं,
जहां कहीं भी जाते पीते
गौ महिषी के दुग्ध हैं। (४६)

तुंग शृंग वन विकट पार कर
फाहियान भी आ गया,
सभ्य सुशिक्षित देश हमारा
उस के मन को भा गया। (४७)

सारनाथ सांची में अपने
खड़े हो रहे स्तूप हैं,
चांद सूर्य के दर्पण मे वे
देखा करते रूप हैं। (४८)

खड़े खड़े दे रहे चुनौती
 वे सुरेश के स्वर्ग को।
इसी देह से प्राप्त कर लिया
 हमने है अपवर्ग को। (४६)

पुष्पयान की भी रचना में
 ग्रस्त-व्यस्त विद्वान् हैं,
और चतुर्दिक् अश्वघोष के
 गूंज रहे अब गान हैं। (५०)

एलोरा और अजन्ता में भी
 चित्राते अब जातकों के चित्र हैं,
तक्षशिला नालन्दा के भी
 दृश्य नितान्त विचित्र हैं। (५१)

अब न मरुस्थल कहलायेगा
 अपना राजस्थान भी,
क्योंकि कुलावे बना रहे हम
 लहरायेंगे धान भी। (५२)

वैरी को हम नहीं जीतते
 वैर और विद्रोह से,
उस पर हैं अधिकार जमाते
 हृदय लगा कर छोह से। (५३)

जल मे, स्थल में, नभ में अपनी
 गति न कहीं भी है रुकी,
लहरा रही ध्वजा है अपनी
 वह न कहीं भी है झुकी। (५४)

लोट रहीं चरणों पर आकर
 आज हमारे ऋद्धियां,
साधे श्वास खड़ी हैं सम्मुख
 आज हमारे सिद्धियां। (५५)

मिटाने क्लेश औ क्रन्दन जगत के कटु कुटिल बन्धन
मनुज का मनुज पर शासन मनुज द्वारा मनुज शोषण,
सुखदतम साम्य का संदेश सुन्दर शाक्य वह लाया
सत्य 'अहिंसा हि परमो धर्म.' का संदेश वह लाया। (५६)

जगा शोषित मजूरों को जगा पीड़ित किसानों को
दुखी औ दीन हरिजन को भगा मुर्दा जवानों को,
निपट निष्प्राण प्राणों में पुनः नव चेतना लाया
अरे! जड़तम अधमतम धूलि में भी चेतना लाया। (५७)

बुझा कर व्यर्थ की चाहें मुलाकर भूल की राहें
मिटा कर वेदना आहें जगाकर मव्य आशाएँ,
दनुज से मनुज यों हमको बनाने शाक्य वह आया
अरे! पशु से हमें मानव बनाने बुद्ध वह आया। (५८)

लिये नव आग शब्दों में लिये नव राग छन्दों में
नया अनुराग भावों में लिये नव त्याग प्राणों मे,
अलौकिक लोक-सेवा-लौं जगाने शाक्य वह आया
अरे! अमरता का अनोखा पथ बताने बुद्ध वह आया। (५९)

शान्त सलौने सरवर-उर पर
लहरों का नर्तन सुन्दर तर,
शशि तारावलि का अति सुखकर
उसमें हास विलास!
सर्वत्र भरा है जीवन में उल्लास। (६०)

कलिकाएँ नव नव नित खिलतीं
परहित उसमें सौरभ भरतीं,
झूम झूम सब के मन हरतीं
आया है मधु-मास!
सर्वत्र भरा है जीवन मे उल्लास। (६१)

तरु तरु उड़ उड़ उडुगण गाते
चहक चहक चहचहा मचाते,
सुन उनका कलरव मुस्काते
भू-मण्डल आकाश !
सर्वत्र भरा है जीवन में उल्लास। (६२)

माता के लालन पालन में
शिशु के हठ मे, भोलेपन मे,
पुरुष-प्रकृति के मधुर मिलन मे
किसका मन्जु निवास ?
सर्वत्र भरा है जीवन में उल्लास। (६३)

खिल विहँस कुसुम सब कुम्हलाते
वल्लरि से विवश बिछुड़ जाते,
रज में मिल कर रज बन जाते
पर क्या उनका जीवन निष्फल। (६४)

मलयानिल क्यों सुमधुर सुरभित
औ अलिकुल क्यों पल-पल पुलकित,
किसकी रज से विकसित, प्रमुदित
हैं मृदुतम कलिकाएँ धवल-नवल ! (६५)

तेरा वह मधुमय जीवन-धन
तज कर भव-भंगुर के बन्धन,
तुझ में चिर निहित, न हो उन्मन
ले देख खोल ये निज अन्तस्तल। (६६)

कंकालों मे प्राण फूँक दे
जन-गन-मन पुलकित हों सुन-सुन,
छेड़ें ऐसी तान अगर हम
ऐसी हो पायल की रुन-झुन,
जीवन में जो जीवन भर दे
ऐसी आज मनावें होरी। (६७)

काम क्रोध मद लोभ मोह भय
धू-धू कर हों भस्म निमिष में,
मानव की पशुता, दानवता
पिघल पिघल कर लय हो जिसमे,
धरणी को फिर धवल बना दें
ऐसी शुचि सुलगावें होरी। (६८)

धर्म-वर्ण के जीर्ण आवरण
मानव अब तत्क्षण ही त्यागें,
ऊँच-नीच के मिथ्या बन्धन
तोड़ बढ़ें सत-पथ पर आगे,
एक रंग मे रंग जावें
ऐसी आज उड़ावें रोली। (६९)

प्रेम-सुधा घट घट मे भर भर
आओ अनुपम फाग रचावें,
तन-मन का सब मैल मिटाकर
जीवन सुन्दर सुखद बनावें,
नया रंग हो, नया ढंग हो, नई ठठोली
ऐसी आज मनावें होली। (७०)

निःश्रेयस अभ्युदय हमारे
संग सग है डोलते,
मंगल-बुध-गुरु-शुक्र-शनिश्चर
रवि-शशि जय-जय बोलते। (७१)

मैत्री-करुणा-मुदिता रक्खें नित्य अपेक्षा मग्न,
ऋद्धिपाद, दशशील पंचबल समझें हम बेध्यंग।
अन्तरवासक और उत्तरासंग सदा हों अंग,
हूँ विमोक्ष सोपान दिखा दे हम को भी श्रीरग ॥ (७२)

पद्मनाभ अमिताभ स्वयं
सर्वसिद्ध तुम हो सिद्धार्थ,
देख मंजु मृगदाव तुम्हारा
'गउनविर' है अत्यन्त कृतार्थ।

बुद्ध शरणं गच्छामि,
धर्मं शरणं गच्छामि,
संघं शरणं गच्छामि।
हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

इति शुभम्

—:०:—